असली लाहौरी

श्री मद भगवद गीता

(स्वामी किशोर दास कृत)

सम्पूर्ण १८ अध्याय १८ महात्म्य सहित
आरती व कमल नेत्र स्तोत्र सहित
(मोटे बम्बई अक्षरों में मुद्रित)

प्रकाशक



पूजा प्रकाशन, पुल कुतब रोड सदर बाजार दिल्ली-6

प्रमुख विक्रेता:- गर्ग कम्पनी बुक सेलर, कुतब रोड सदर बाजार दिल्ली-6



[illegible] में अर्जुन को गीता का उपदेश।

श्रीगुरुःशरणम्

श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा



अर्जुन-विषादयोग नामक प्रथम अध्याय का कथा-प्रसंग

राजसूय यज्ञ में पाण्डवों के ऐश्वर्य को देखकर दुर्योधन के मन में भारी जलन पैदा हो गई। शकुनि आदि की संमति से उसने जुआ खेलने के लिये युधिष्ठिर को बुलाया और उनको छल से हराकर उनका सर्वस्व ले लिया। बाद में यह निश्चय सुनाया कि पाण्डवों लोग द्रौपदी के साथ बारह वर्ष वन में रहें और एक वर्ष छिपकर

रहें। इस तरह तेरह वर्ष वन में रहने के बाद पाण्डवों को,
उनका राज्य लौटा दिया जायगा। परन्तु अज्ञातवास
या छिपकर रहते समय पाण्डवों का पता चल जाने पर
उन्हें पुनः १३ वर्ष वन में रहना पड़ेगा। इस निर्णय के
अनुसार तेरह वर्ष बीत जाने पर पाण्डवों ने अपना राज्य
वापस माँगा तब दुर्योधन ने देने से साफ इन्कार कर
दिया। राजा द्रुपद ने ज्ञानी तथा वयोवृद्ध पुरोहित आदि
को समझाने के लिये भेजकर बहुत उपाय किये परंतु
दुर्योधन ने किसी की बात नहीं मानी। तब दोनों ओर से

युद्ध की तैयारी होने लगी और युद्ध का निमंत्रण देने के लिये दुर्योधन श्रीकृष्ण के पास आया। उसी दिन अर्जुन भी वहाँ आये। उस समय श्रीकृष्ण भगवान् सो रहे थे। दुर्योधन उनके सिरहाने की ओर बैठ गया और अर्जुन दोनों हाथ जोड़कर उनके चरणों के सामने खड़े हो गये। जागने पर श्रीकृष्ण ने अपने सामने अर्जुन को देखा और बाद में पीछे की ओर मुड़ने पर अपने सिरहाने बैठे हुए दुर्योधन को। श्रीकृष्ण ने दोनों का आदर-सत्कार किया और आने का कारण पूछा। तब दुर्योधन ने कहा कि

आपके पास युद्ध का निमंत्रण देने को पहिले मैं आया हूँ और सज्जन लोग पहिले आनेवाले की ही सहायता करते हैं। समस्त भूमण्डल में आपसे बढ़कर दूसरा नहीं है इसलिये आप मेरी सहायता करें। श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आप पहिले आये हैं पर मैंने तो पहिले अर्जुन को ही देखा है। जो हो, मैं दोनों की सहायता करूँगा। शास्त्रानुसार बालकों की इच्छा पहिले पूरी की जाती है, अतः पहिले अर्जुन की ही इच्छा पूरी करनी चाहिये। मेरी सहायता इस प्रकार की होगी:

एक ओर मेरी नारायणी सेना रहेगी और दूसरी ओर मैं अकेला ही रहूँगा और युद्ध तो क्या, मैं शस्त्र तक हाथ में नहीं लूँगा। हे अर्जुन! इन दोनों में से तुम्हें जो पसन्द हो माँगो। इस पर अर्जुन ने श्रीकृष्ण को माँग लिया। दुर्योधन ने इनकी नारायणी सेना माँग ली और बड़ी प्रसन्नता के साथ हस्तिनापुर लौट गया। दुर्योधन के चले जाने के बाद श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा कि हे अर्जुन! तुम केवल मुझ निःशस्त्र को लेकर क्या करोगे? अर्जुन ने उत्तर दिया कि आप अकेले ही सबका नाश करने में

समर्थ हैं। इसके सिवा और भी बहुत से कारण बताये।
श्रीकृष्ण ने अर्जुन के इच्छानुसार सारथी बनकर युद्धारम्भ
के समय कुरुक्षेत्र में उन्हें गीता का दिव्य उपदेश
सुनाया। इससे पहले स्वयं श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर जाकर
हर प्रकार से दुर्योधन को समझाने की चेष्टा की, परन्तु
उसने स्पष्ट कह दिया कि मेरे जीते-जी पाण्डव कदापि
राज्य नहीं पा सकते। मैं उन्हें सूई की नोक भर भी जमीन
नहीं दे सकता। तब न्यायसंगत अपना राज्य प्राप्त करने
के लिये माता कुन्ती की आज्ञा और श्रीकृष्ण की प्रेरणा से

पाण्डव धर्म समझकर युद्ध के लिये तैयार हो गये। युद्ध की तैयारी हो जाने पर वेदव्यासजी ने धृतराष्ट्र के पास आकर कहा कि यदि तुम घोर संग्राम देखना चाहो तो मैं तुम्हें दिव्य नेत्र प्रदान करूँ, इस पर धृतराष्ट्र ने कहा कि हे ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ ! मैं कुल के इस हत्याकाण्ड को अपनी आँखों से देखना तो नहीं चाहता परन्तु युद्ध का समस्त समाचार अच्छी तरह सुनना चाहता हूँ। तब वेदव्यासजी ने सञ्जय को दिव्य दृष्टि प्रदान करके धृतराष्ट्र से कहा कि ये सञ्जय तुम्हें युद्ध के सब वृत्तान्त सुनावेंगे । इनसे

प्रत्यक्ष या परोक्ष की कोई भी बात छिपी न रह सकेगी। ये सब बातों को ज्यों की त्यों ठीक जानकर आप से कहेंगे, और इनको शस्त्र आदि के द्वारा किसी तरह का कष्ट भी न होगा। यह होनी है, अवश्य होगी। इस सर्वनाश को कोई भी रोक न सकेगा। अन्त में धर्म की जय होगी। जब कौरव-पाण्डवों का युद्ध लगातार दस दिन तक होता रहा और भीष्म पितामह रथ से गिरा दिये गये तब सञ्जय ने भीष्म पितामह के मारे जाने का समाचार धृतराष्ट्र को सुनाया। उसे सुनकर धृतराष्ट्र को बड़ा ही दुःख हुआ

और युद्ध की सभी बातें विस्तारपूर्वक सुनाने के लिये इन्होंने सञ्जय से कहा। तब सञ्जय ने दोनों ओर की व्यूह-रचना (सेना-सन्निवेश) आदि का विस्तार से वर्णन आरम्भ किया।

इसके आरम्भ में धृतराष्ट्र ने सञ्जय से पूछा कि हे सञ्जय! कुरुक्षेत्र में हमारे और पाण्डु के पुत्रों ने युद्ध की इच्छा से इकट्ठा होकर क्या किया? तब सञ्जय बोला कि हे धृतराष्ट्र! व्यूह-रचना सहित खड़ी पाण्डवों की सेना को देखकर दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास जाकर बोला कि हे

गुरुजी ! पाण्डवों की बड़ी सेना को तो देखिये, इसकी व्यवस्था राजा द्रुपद के पुत्र और आपके शिष्य ने की है। इस सेना में भीम और अर्जुन के समान वीर, सात्यकि, विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान, काशिराज, पुरुजित् कुन्तिभोज, शैव्य, युधामन्यु, उत्तमौजा, अभिमन्यु, और द्रौपदी के पाँच पुत्र हैं ये सब महारथी हैं। आपकी सेना में आप, भीष्मपितामह, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण, भूरिश्रवा और भी बहुत से युद्ध-विद्या में चतुर हमारे लिये प्राण तक त्यागनेवाले शूर-वीर हैं। परन्तु

भीमसेन से रक्षित पाण्डवों की सेना के सामने हमारी सेना कमजोर मालूम होती है इसलिए आप सब लोग सेना के नायक भीष्म पितामह की ही रक्षा करें। राजा दुर्योधन की बात सुनकर भीष्मपितामह ने सिंह के समान गर्जना करके बड़े जोर से अपना शंख बजाया। इसके बाद चारों तरफ से एक साथ शंख, नगाड़े, ढोल, मृदङ्ग, शहनाई, गोमुख आदि युद्ध के बाजे बजने लगे। तब पाण्डवों की सेना में सफेद घोड़ों वाले बहुत बड़े रथ में बैठकर श्रीकृष्ण भगवान् ने पाञ्चजन्य और अर्जुन ने

देवदत्त नामक शंख बजाया और भीमसेन ने पौण्ड्र, युधिष्ठिर ने अनन्तविजय, नकुलने सुघोष तथा सहदेव ने मणिपुष्पक शंख बजाया। फिर काशिराज, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, सात्यकि, द्रुपद, द्रौपदी के पुत्र और अभिमन्यु ने अपने-अपने शंख बजाये। इस प्रकार अत्यन्त भयंकर शब्द से पृथिवी और आकाश गूँज उठे और कौरवों का हृदय भी काँपने लगा। ऐसे युद्ध के आरम्भ में गाण्डीव धनुष को हाथ में लेकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण भगवान् से कहा कि हे अच्युत! आप मेरा रथ

इन दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा करें। मुझे जिन लोगों के साथ युद्ध करना होगा उन्हें मैं देखना चाहता हूँ। सञ्जय ने धृतराष्ट्र से कहा कि हे भारत! अर्जुन के कहने पर श्रीकृष्ण भगवान् ने दोनों सेनाओं के बीच में रथ कोले जाकर खड़ा कर दिया। तब अर्जुन ने वहाँ दोनों सेनाओं में अपने ही चाचा, दादा, गुरु, मामा, भाई, पुत्र, पौत्र, सखा, ससुर और मित्र आदि बन्धु-बान्धवों को देखकर श्रीकृष्णजी से कहा कि हे श्रीकृष्ण जी! इन दोनों सेनाओं में अपने ही लोगों को युद्ध के लिये एकत्र देखकर मेरे

हाथ-पैर शिथिल हो रहे हैं, मुख सूखा जा रहा है, शरीर काँप रहा है, रोमाञ्च हो रहा है, हाथ से धनुष गिरा जा रहा है और सारा शरीर जल रहा है। मुझमें अब खड़े रहने तक की शक्ति नहीं रह गई है। मेरा सिर घूम रहा है। हे श्रीकृष्ण! इनको मारकर मुझे क्या लाभ होगा? मैं विजय नहीं चाहता, राज्य लेकर हम क्या करेंगे? जिनके लिये राज्य और सुख-भोग चाहिये वे ही लोग प्राण और धन की आशा को त्याग कर मरने को खड़े हैं। ये गुरु, चाचा, पुत्र, दादा, मामा, ससुर, पौत्र, साला और

सम्बन्धी खड़े हैं। ये लोग मुझे भले ही मार डालें परन्तु मैं इनको मारना नहीं चाहता। हे श्रीकृष्ण ! मैं इनको तीनों लोकों, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल के लिये भी मार नहीं सकता। इन धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि को मारने से मुझे क्या प्रसन्नता होगी ? ये आततायी हैं क्योंकि—अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्र-दारापहर्ता च षडेते ह्याततायिनः। अर्थात् आग लगाने-वाला, विष देनेवाला, शस्त्र प्रहार करनेवाला, धन हरण करनेवाला, जमीन हड़पनेवाला और स्त्री का

अपहरण करनेवाला ये ६ आततायी कहे गये हैं। नीतिशास्त्र के अनुसार इनको मारने में दोष नहीं है फिर भी नीतिशास्त्र से धर्मशास्त्र प्रबल होता है, इसलिये धर्मशास्त्रानुसार इनको मारने में मुझको पाप नहीं मिलेगा अर्थात् इनका वध करना पाप ही है। हे माधव ! भला अपने ही सम्बन्धियों को मारने से सुख कैसे मिलेगा ? यद्यपि लोभ के कारण इनकी बुद्धि नष्ट हो गई है और कुल के नाश से होनेवाले बड़े-बड़े अनर्थों को जानकर भी ये लोग नहीं देख रहे हैं परन्तु

क्या मुझे भी इस पाप से बचना न चाहिये? कुल के नाश से सनातन कुलधर्म का नाश हो जाता है, धर्म के नाश से कुल में पाप बढ़ता है, पाप के बढ़ने से कुलस्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जाती हैं और स्त्रियों के बिगड़ने से वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न होती है। जिस कुल में वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं वह कुल और उस कुल का नाश करने-वाला दोनों ही नरक में जाते हैं और सनातन जातिधर्म व कुलधर्मों का भी नाश हो जाता है। हे जनार्दन! मैंने सुना है कि कुलधर्म का नाश हो जाने से सदा के लिये

नरक में वास हो जाता है। हाय ! राज्यसुख के लोभ से अपने कुल का नाश करने के लिये भी हम लोग तैयार हो गये। ये शस्त्रधारी धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि युद्ध-क्षेत्र में प्रतिकार-रहित और निःशस्त्र दशा में मुझे मार डालें तो उससे मेरा अधिक कल्याण होगा। सञ्जय ने धृतराष्ट्र से कहा कि हे राजन् ! इस प्रकार कहकर अर्जुन उसी क्षण में धनुष और बाण को छोड़कर शोक से दुःखित होकर रथ के पिछले भाग में जाकर बैठ गये ॥४७॥

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद में अर्जुन का विषादयोग नामक पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

प्रथम अध्याय का माहात्म्य

एक समय कैलाश पर्वत के शिखर पर श्रीभगवान् शंकरजी से पार्वतीजी ने पूछा कि हे भगवान् ! मैंने सुना है कि वैकुंठलोक की प्राप्ति के लिये श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ करना और सुनना सब उपायों में श्रेष्ठ उपाय है, आप कृपा करके मुझसे गीता का माहात्म्य कहिये।

श्रीशंकर भगवान् ने श्रीविष्णु भगवान् का स्मरण कर कहा कि हे पार्वती देवि ! मैं गीता के ही कारण त्रैलोक्य में पूजनीय हूँ। मैं हमेशा बराबर इस गीता-ज्ञान में लीन रहता हूँ। इसके द्वारा मुझे संसार की माया नहीं सताती है और इसके द्वारा सर्वदा पवित्र बना रहता हूँ। हे देवि ! जैसे तुमने मुझसे पूछा इसी तरह श्रीलक्ष्मीजी ने श्रीविष्णु भगवान् से पूछा और विष्णु भगवान् ने जो कुछ इसके सम्बन्ध में कहा है उसे मैं तुमसे कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो।

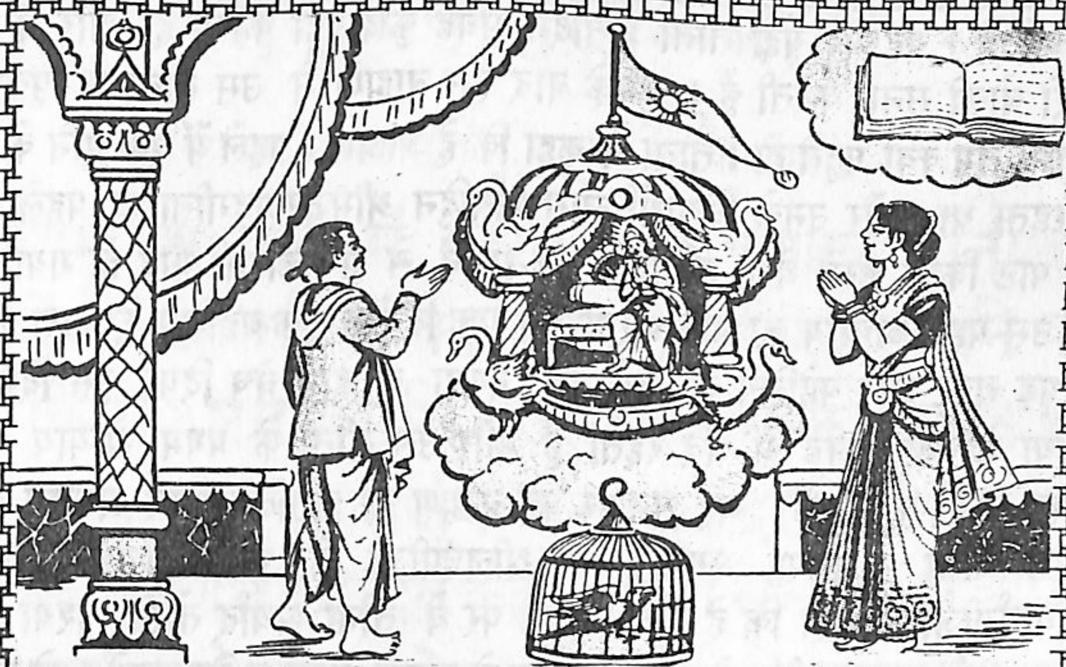
एक समय श्रीलक्ष्मीजी ने श्रीविष्णु भगवान् से पूछा कि हे महाराज ! आप त्रैलोक्य के मालिक होकर क्षीरसमुद्र में जाकर अकेले सूनी जगह में किसी विशेष

ध्यान में लीन रहा करते हैं इसका क्या कारण है ? श्रीविष्णु भगवान् बोले कि हे श्रीमहालक्ष्मीजी ! मैं उस एकान्त स्थान में उस अनादि, अनन्त, अखण्ड, अगोचर, अक्षर, अचिन्त्य; अनिर्वचनीय और ज्योतिस्वरूप का दिव्य दृष्टि से दर्शन करता हूँ ! योगीजन सर्वदा जिसके ध्यान को किया करते हैं। उसी ईश्वर के ज्ञान का भण्डार, स्वरूप, रूपान्तर, गीताशास्त्र नाम से प्रसिद्ध ईश्वर का प्रतिस्वरूप है। श्रीकृष्ण भगवान् ने संसार के कल्याण के लिए वेद, शास्त्र, पुराणों के सार से पूर्ण इस गीताशास्त्र को कुरुक्षेत्र में अर्जुन को सुनाया, जिसे श्रीवेदव्यासजी ने अठारह अध्यायों में विभाग कर महाभारत के अन्दर मिला लिया। श्रीमद्भगवद्गीता ईश्वर की वाङ्मयी मूर्ति है, जिसके क्रम से आदि के पाँच अध्याय उस मूर्ति के मुख हैं, और दस अध्याय उसकी भुजायें हैं तथा एक अध्याय उदर है और दो अध्याय पैर हैं। ज्ञान के द्वारा ही उस महेश्वर का दर्शन होता है जिस दर्शन से समस्त पापों का नाश हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता का एक अध्याय, आधा अध्याय, एक श्लोक, आधा श्लोक, एक पाद का पाठ करने से प्राणी समस्त पापों से छूटकर विष्णुलोक को चला जाता है। लक्ष्मीजी ने पूछा कि हे महाराज ! किसी को

बैकुण्ठलोक मिला है तो आप उसकी कथा मुझसे कहिये क्योंकि पुण्यकर्म करनेवालों की कथा सुनने से पापों का नाश हो जाता है।

विष्णु भगवान् बोले हे लक्ष्मीजी ! एक सुशर्मा नाम का परम दुराचारी, दुष्ट, पापकर्म करनेवाला ब्राह्मण था। वह अपना सम्पूर्ण समय कुकर्म में बिताया करता था। ऐसा कोई कुकर्म उससे शेष भी न रहा जिसको उसने नहीं किया। कभी भी शुभ कर्म में उसका मन नहीं करता था। एक दिन बकरियों को चराने कुछ दूर जंगल में चला गया वहाँ उस सुशर्मा ब्राह्मण को सर्प ने काट लिया और वह ब्राह्मण सर्प के काटने से मर गया। पापकर्मों के कारण उस ब्राह्मण को बहुत काल तक नरक की यातना भोगने के बाद मनुष्य लोक में आकर बैल-शरीर में जन्म लेना पड़ा। वह ब्राह्मण बैल-शरीर में जन्म लेकर एक दुर्बल लँगड़े भिखमंगे के यहाँ रहा करता था और वह भिखमंगा उस बैल पर सवारी करता था तथा भिक्षा न मिलने के कारण न तो वह स्वयं अपना पेट भर पाता था, न वह उस बैल को ही पेट भर चारा दे सकता था। इस कारण वह बैल बहुत दुर्बल हो गया। एक दिन मार्ग में ही गिर पड़ा और बेहोश हो गया उसकी आँखें निकल आईं परन्तु वह बैल मरा नहीं। बिना

पापों का अन्त हुए प्राण कैसे निकल सकते थे । वहाँ भीड़ लग गई । सभी लोग उस बैल के दुःख से दुखी होने लगे और उस बैल के मर जाने की इच्छा सबको हो गई । सब लोग ईश्वर को पुकार-पुकारकर कहते थे कि हे ईश्वर ! मैं अपना अमुक पुण्य इसको देता हूँ उस पुण्य के प्रभाव से इस बैल का कष्ट दूर हो जाय । उस जगह एक वेश्या भी आ गई और लोगों को अपना-अपना पुण्य देते देखकर उस वेश्या ने कहा कि यद्यपि मैंने अपने होश-हवास में कोई पुण्य नहीं किया, तथापि अनजान में कदाचित् मुझसे कोई पुण्य हुआ हो तो उस पुण्य से इसका दुःख दूर हो जाय । यह कहने के साथ उस बैल का प्राण निकल गया और उस वेश्या के पुण्य प्रभाव से एक ब्राह्मण के घर में जन्म लिया और उसे पूर्वजन्म का सब समाचार भी याद रहा । वह बैल जब ब्राह्मण के शरीर में जन्म पाया तब एक दिन उस वेश्या के घर जाकर उस वेश्या से अपने पूर्वजन्म का समाचार सुनाया और कहा कि आप उस पुण्य को मुझसे कहिये जिस पुण्य को आपने उस बैल-शरीर में मुझे दिया था । वेश्या ने उत्तर दिया कि हे ब्राह्मण ! मैंने अपनी जान में कोई पुण्य किया ही नहीं । मैंने तो लोगों की देखादेखी कह दिया था । हे ब्राह्मण ! सुनो, एक बात मुझे याद



प्रथम अध्याय में तोते से गीता पाठ सुनने से मुक्ति

आ गई है। यह मेरे यहाँ तोता प्रतिदिन सुबह कुछ पढ़ा करता है और मैं इसकी प्यारी बोली सुना करती हूँ। इसके बाद उस ब्राह्मण ने उस तोता से पूछा कि हे तोता ! तुम क्या पढ़ते हो। तोता ने कहा कि हे ब्राह्मण ! पहले मैं एक मुनि के आश्रम में रहता था और उनके विद्यार्थी लोग प्रतिदिन श्रीमद्भगवद्गीता के पहले अध्याय का पाठ किया करते थे। प्रतिदिन पाठ सुनने से मुझको भी याद हो गया और मैं भी उस पहले अध्याय का पाठ करता हूँ। एक दिन मैं एक बहेलिये के जाल के बन्धन में पड़ गया और बहेलिये ने मुझे इस वेश्या के हाथ बेच दिया, उस दिन से इस वेश्या के यहाँ पिंजड़े में बंद रहता हूँ और उस गीता के प्रथम अध्याय का पाठ नित्य किया करता हूँ। यह सुनकर वह ब्राह्मण भी प्रतिदिन प्रथम अध्याय का पाठ करने लगा। विष्णु भगवान् ने श्रीलक्ष्मीजी से और श्रीशंकर भगवान् ने श्रीपार्वतीजी से कहा कि हे देवि ! मरने पर वे तीनों अर्थात् तोता, वेश्या और वह ब्राह्मण श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम अध्याय के पाठ के प्रभाव से वैकुण्ठलोक को चले गये।

श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता—भाषा

सांख्ययोग नामक द्वितीय अध्याय का कथा-प्रसङ्ग

प्रथम अध्याय में कौरव तथा पाण्डव दोनों की सेनाओं के महारथियों का और उनकी शंखध्वनि का वर्णन किया। संग्रामभूमि में स्थित वीरों को देखने की प्रबल इच्छा होने पर अर्जुन के रथ को दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कर देने की बात कही। दोनों सेनाओं में अपने ही स्वजनों को देखकर शोक और मोह के कारण युद्ध से अर्जुन के पृथक् हो जाने की बात कही, उसके बाद अस्त्र-

शस्त्र परित्याग कर विषाद करते हुए बैठ जाने की बात कही गई और प्रथम अध्याय भी समाप्त हुआ। इसके बाद श्रीकृष्ण ने पुनः अर्जुन को युद्ध के लिये किस प्रकार तैयार किया इस विषय में सञ्जय अर्जुन की स्थिति का वर्णन करते हुए द्वितीय अध्याय का आरम्भ करते हैं।

सञ्जय बोले कि हे राजन्! इस प्रकार दया अथवा मोह से व्याप्त, नेत्रों में आँसू भरे, अत्यन्त दुखी अर्जुन से श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि हे अर्जुन! ऐसे संकट के

समय हीन पुरुषों से सेवित, स्वर्गप्राप्ति में बाधक और

कीर्तिनाश करनेवाला महामोहरूपी दुःख तुमको कहाँ से प्राप्त हुआ। ऐसा कायर मत बनो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता। मन की इस कमजोरी को दूर कर वीरों के समान खड़े हो जाओ। अर्जुन बोले कि हे मधुसूदन! युद्ध के लिये भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य खड़े हैं, ये पूजा करने केयोग्य हैं, इनके साथ वचन से भी युद्ध (वाद-विवाद) करना अनुचित कहा है मैं उन पर बाणों की वृष्टि किस प्रकार करूँगा। परलोक के विरुद्ध गुरुजनों का वध न करके इस लोक में भिक्षा (भीख) माँगकर भी खाना अच्छा है,

किन्तु अर्थ और काम भोगों के लिये गुरुजनों को मार-कर इस लोक में भी रुधिर से सने हुए भोग को भोगना अच्छा नहीं है अथवा अर्थ और काम-तृष्णा से व्याप्त होकर दुर्योधन के अन्न को खानेवाले भीष्म, द्रोण को मारकर रुधिर से सने हुए भोग भोगना अच्छा नहीं है। मैं यह भी नहीं जानता कि मेरे लिये युद्ध करना और न करना इन दोनों में से कौनसा श्रेष्ठ है, अथवा कौन जीतेगा ? और इन लोगों को मारकर मैं जीना भी नहीं चाहता हूँ। मैं बिल्कुल घबड़ा गया हूँ, मेरी बुद्धि स्थिर

नहीं है, धर्म क्या है यह समझ में नहीं आ रहा है, मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में आया हूँ, मुझे आप उचित उपदेश दीजिये। क्योंकि मेरी समझ में इस शोक को दूर करने में समर्थ स्वर्ग का भी राज्य नहीं है। इसके बाद संजय धृतराष्ट्र से बोले—हे राजन्! अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा।' यह कहकर वे चुप हो गये। दोनों सेनाओं के बीच में अर्जुन की दशा देख हँसते हुए श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन! तुम पण्डितों के योग्य ज्ञान की केवल बातें कहते हो, क्योंकि जो सच्चे

ज्ञानी पण्डित हैं वे लोग जिनके प्राण चले गये हैं अथवा जिनके नहीं गये हैं उनके लिये भी शोक नहीं करते हैं मैं इसके पहले नहीं था, या तुम कभी नहीं थे, या ये राजा कभी नहीं थे अथवा इसके बाद हम लोग न होंगे। ऐसी बात नहीं है अर्थात् हम लोग पहले भी थे बाद भी रहेंगे। अब इससे यह सिद्ध हुआ कि जीव ईश्वरांश है, शरीर नष्ट होने पर भी जीव का नाश नहीं होता है। किन्तु जैसे इस देह में कुमार, युवा, वृद्ध क्रम से अवस्था के बदलने पर वही हम हैं यह ज्ञान रहता है। इसी तरह इस

देह के बाद दूसरी देह के मिलने पर भी लिंग (सूक्ष्म) देह सम्बन्धी विकार (अज्ञान) से आत्मा भासता है। इसलिये धीर पुरुष इस विषय में मोहित नहीं होता है। शीत-उष्ण, सुख-दुःख को देनेवाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो क्षणिक हैं और अनित्य हैं, उनको तुम सहन करो, उनके वश होकर हर्ष और विषाद के भागी मत बनो। सहन करनेवाले धीर पुरुष के लिये सुख-दुःख दोनों समान हैं और वही समान समझनेवाला धीर पुरुष मुक्ति का भागी है। शीत-उष्ण, सुख-दुःख अभ्मत

पदार्थ हैं, ये आत्मा में नहीं रहते हैं और सत् स्वभाव आत्मा है उसका नाश भी नहीं होता है। सम्पूर्ण जगत् को आत्मा ने व्याप्त कर रक्खा है, कोई आत्मा का नाश नहीं कर सकता। नाश रहित, अप्रमेय (अपरिच्छिन्न), नित्य (सर्वदा एकस्वरूप) आत्मा के ये देह सुख-दुःख आदि धर्मवाले कहे गये हैं। जब आत्मा का न विनाश है और न इस आत्मा के साथ सुख:दुख का सम्बन्ध है तब मोह से उत्पन्न शोक का त्याग कर युद्ध करो, धर्म त्याग मत करो। जो इस आत्मा को

मारनेवाली समझता है और जो इसे मरी समझता है, वे दोनों ही नहीं समझते, क्योंकि यह आत्मा वास्तव में न किसी को मारती है और न किसी के द्वारा मारी जाती है, और न कभी जन्मती है, न मरती है। शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता है, क्योंकि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों का त्याग कर नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार आत्मा भी पुरानी देह त्याग कर नयी देह धारण करती है। इस आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न पानी भिंगा

या गला सकती है और न हवा सुखा सकती है, क्योंकि यह आत्मा न काटी जा सकती है, न जल सकती है, न भींग या गल सकती है और न सूख सकती है। यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापक, स्थिर, अचल और सनातन है। यह आत्मा इन्द्रियों से जानी नहीं जा सकती, इसके विषय में कल्पना भी नहीं हो सकती अर्थात् मन से भी परे है और विकार-रहित है। इसलिये शोक नहीं करना चाहिये। यदि तुम इस आत्मा को सदा जनमनेवाली और मरनेवाली मानते हो तो भी तुम्हें इसके लिये शोक

नहीं करना चाहिये। क्योंकि जो जनमता है वह अवश्य मरेगा, और जो मरा है वह अवश्य जनमेगा। इसलिये भी शोक करना उचित नहीं है। समस्त प्राणी जन्म से पहले बिना शरीरवाले और मरने के बाद भी बिना शरीरवाले ही हैं, केवल मध्यकाल (जन्मकाल) में शरीरवाले मालूम होते हैं तो फिर इस विषय में शोक-विलाप व्यर्थ हैं। आत्मज्ञान का विषय बड़ा ही कठिन है, कोई महापुरुष शास्त्राचार्य के उपदेश से सर्वगत, नित्य, ज्ञानानन्द स्वभाववाली आत्मा को अलौकिक होने के

कारण विस्मय से देखता है, और कोई आश्चर्य की तरह कहता है, तथा कोई आश्चर्य की तरह सुनता है, और कोई सुनकर भी इस आत्मा को नहीं जानता है। यह सबके शरीर में अवध्य है। और तुम क्षत्रिय हो, तुम्हारे लिये धर्मयुद्ध से बढ़कर अधिक हितकारक और कुछ नहीं है। बिना यत्न के स्वेच्छा से प्राप्त खुला हुआ स्वर्ग का द्वाररूप यह संग्राम भाग्यशाली क्षत्रियों को प्राप्त होता है। यदि तुम धर्मयुक्त संग्राम को न करोगे तो अपने क्षत्रियधर्म और कीर्ति को खोकर पाप के भागी बनोगे।

सब लोग तुम्हारी हमेशा निन्दा करेंगे, जो कि श्रेष्ठ पुरुषों के लिये मृत्यु से भी बढ़कर दुःखदायी होती है। और महारथी लोग कहेंगे कि अर्जुन डरकर संग्राम से भाग गया, जो कि आज तक तुम्हारा संमान करते थे वे ही अब निन्दा करने लगेंगे तथा शत्रु लोग तुम्हारे सामर्थ्य की निन्दा करेंगे और न कहने योग्य वचनों को भी कहेंगे फिर उससे बढ़कर क्या दुःख होगा। यदि तुम संग्राम में मारे जाओगे तो स्वर्ग पाओगे और यदि तुम जीतोगे तो पृथिवी का सुख पाओगे। यदि तुमको पाप का भय है तो

सुख-दुःख तथा सुख-दुःख के कारणस्वरूप लाभ-हानि और लाभ-हानि के कारणस्वरूप जय-पराजय को एकसा मानकर युद्ध करो, तुम्हें पाप न लगेगा। यह बुद्धि तुम्हारे लिये ज्ञानयोग के विषय में कही गयी। अब इसकी प्राप्ति में कारण जो निष्काम कर्मयोग है उसकी बात सुनो, जिस निष्काम बुद्धि से युक्त होकर कर्मों के बन्धन को अच्छी तरह तोड़ सकोगे। इस निष्काम कर्मयोग में कर्म विशेष होने से आरब्ध कर्म का नाश नहीं होता, और विपरीत फलस्वरूप दोष भी नहीं होता है इसलिये

निष्काम धर्म का थोड़ा-सा भी किया गया उपाय जन्म-मृत्युरूप महान् भय से मुक्त कर देता है। इस ईश्वराराधनरूप कर्मयोग में एक निश्चयात्मिकता बुद्धि होती है अर्थात् परमेश्वर की भक्ति से ही भव के पार होंगे यह एक निष्ठा बुद्धि होती है और अज्ञानी (सकामी) पुरुषों की अनेक भेदोंवाली तथा कामनाभेद से अनन्त बुद्धि होती है। अज्ञानी लोग स्वर्ग से बढ़कर दूसरा सुख नहीं मानते, इसलिये वेद के जो अर्थवाद (अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति) हैं उनसे परे ईश्वर

तत्त्व नहीं है यह कहते हुए कर्म में ही प्रीति रखते हैं। भोग ऐश्वर्य की प्राप्ति में जिनका चित्त लीन है उनको ईश्वर-प्राप्ति की निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती है, क्योंकि उनका चित्त भोगादि में ही सदा आसक्त रहता है। भोग ऐश्वर्य में आसक्त पुरुष का मन एकान्त होने पर भी परमेश्वर के विषय में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं रखता है। वेद सकाम है, तुम इस कामनादि के फल की इच्छा को छोड़कर निष्काम हो जाओ। सुख-दुःख, शीत-उष्ण, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वजों का त्याग करो, नित्य सत्त्व

का आश्रय ग्रहण करो, न सांसारिक वस्तु प्राप्त करने की इच्छा करो, न प्राप्त वस्तु की रक्षा करने का ही प्रयास करो और सदा आत्मा में परायण रहो। जिस तरह सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के मिलने पर सभी कार्य उनसे पूर्ण होते हैं, छोटे जलाशयों की जरूरत नहीं रह जाती, उसी तरह वेदों में कहे गये काम्य कर्मों का फल ब्रह्म-ज्ञानी को अनायास ही प्राप्त होता है। और तुमको केवल कर्म करने का अधिकार है, बन्धन को देनेवाले कर्मफल में अधिकार मत करो, कर्मफल की कभी इच्छा भी न

करो और न कर्मत्याग का ही साहस करो। तुम योगस्थ (परमेश्वरमें परायण) होकर कर्म करो, फलकी आशामत करो, सफलता और निष्फलता दोनों को समान मानकर कर्म को करो, क्योंकि समत्वज्ञान को ही योग शब्द से कहा गया है। समत्वरूप बुद्धियोग की अपेक्षा काम्यकर्म अत्यन्त हीन है, इसलिये बुद्धियोग का आश्रय ग्रहण करो, अथवा बुद्धि में शरण (रक्षक) ईश्वर का आश्रय ग्रहण करो, क्योंकि फल की इच्छा से कर्म करनेवाले पुरुष निकृष्ट (दीन) होते हैं, समत्वरूप बुद्धि योगवाला

पुरुष इसी लोक में पुण्य पाप दोनों को परमेश्वर की कृपा से त्याग देता है अर्थात् पुण्य पाप से लिप्त नहीं होता है। इस समत्वरूप योग के लिये उपाय करो क्योंकि कर्तव्य-कर्म में कुशलता ही योग है। समत्वरूप बुद्धि से युक्त पुरुष कर्मजन्य फल को त्याग कर केवल ईश्वराराधनार्थ कर्मकरनेसेविद्वान् (ज्ञानी) होकरजन्म-मृत्युरूपबन्धन से विनिर्मुक्त होकर सर्वोपद्रवरहित विष्णुपद (मोक्ष) को चले जाते हैं। इस तरह परमेश्वर की आराधना से जब तुम्हारी बुद्धि मोहरूप दलदल को अच्छी तरह पार कर

जायगी, तब इस लोक और परलोक संबंधी सुनी हुई और सुनने में आनेवाली सभी बातों से वैराग्य प्राप्त कर सकोगे। भाँति भाँति के वचनों को सुनने से विचालित हुई तुम्हारी बुद्धि जब ईश्वर के स्वरूप में अचल और स्थिर होकर ठहर जायगी तब तत्वज्ञानरूप फल को पा सकोगे।

इसके बाद ईश्वर को प्राप्त स्थितप्रज्ञ के लक्षण और आचरण जानने की इच्छा से अर्जुन पूछते हैं कि हे केशव! समाधि में स्थित स्थितप्रज्ञ अर्थात् स्थिर बुद्धि वाले पुरुष का क्या लक्षण है? वह कैसे बोलता है? कैसे बैठता है?

और कैसे चलता है ? श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे पार्थ ! अर्जुन ! जब मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है और अपने ही परमानन्दरूप आत्मा में आत्मा से सन्तुष्ट रहता है तब वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। जो न दुःख से दुखी होता है और न सुख की चाहना करता है, और राग, भय तथा क्रोध से रहित है उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं। जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित है, शुभ (अनुकूल) होने पर प्रसन्न नहीं होता और अशुभ (प्रतिकूल) होने पर द्वेष नहीं करता है उसकी बुद्धि स्थिर है। जैसे कछुआ

सब पदार्थों से अपने अंगों को बटोर लेता है वैसे ही जब योगी पुरुष अपनी इन्द्रियों को विषयों से अनायास (बेपरिश्रम) खींच लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर कही जाती है। विषयों का त्याग करने से विषय उससे दूर हो जाते हैं परन्तु विषय-भोग की वासना बनी रहती है, उसी वासना की निवृत्ति ब्रह्म का साक्षात्कार होने से ही होती है परन्तु असंयमी पुरुष की बुद्धि और मन स्थिर नहीं होते हैं। इसका कारण यह है कि मोक्ष के विषय में प्रयत्न करते रहने पर भी चञ्चल कर देनेवाली इन्द्रियाँ उसके चित्त

को हर लेती हैं। इसलिये साधक को चाहिये कि इन्द्रियों को वश में करके समाहितचित्त होकर मुझमें मन को लगाकर बैठे, क्योंकि जिस पुरुष के वश में इन्द्रियाँ हैं उसकी बुद्धि स्थिर होती है। विषयों का चिन्तन करने से विषयों में आसक्ति होती है और आसक्ति से उन विषयों के पाने की प्रबल इच्छा होती है तथा इच्छा की पूर्ति न होने से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से संमोह (कार्य अकार्य के विचार का नाश) होता है और संमोह से शास्त्राचार्यों के उपदिष्ट वचनों के स्मरण में भ्रम होता है

तथा स्मृतिभ्रम से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धिनाश से नष्ट (मृततुल्य) हो जाता है। राग-द्वेष से रहित हुई वशीभूत इन्द्रियों द्वारा विषय-भोग को करता हुआ मनोविजयी पुरुष ही शान्ति को पाता है और शान्ति के मिलने पर सब दुःखों का नाश हो जाता है तथा उस प्रसन्नचित्त पुरुष की बुद्धि सब ओर से हटकर परमात्मा में ही स्थिर हो जाती है। अजितेन्द्रिय पुरुष को शास्त्रा-चार्यों के उपदेश से आत्मविषयक बुद्धि ही उत्पन्न नहीं होती और अन्तःकरण में आस्तिक भावना नहीं होती

अर्थात् वह ईश्वर के ध्यान से विमुख रहता है तथा आस्तिक बुद्धि न होने से शान्ति नहीं मिलती और बिना शान्ति के सुख (मोक्षानन्द) कैसे हो सकता है। जैसे जल में नाव को वायु बहा ले जाती है उसी तरह विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के बीच जिस इन्द्रिय के साथ मन रहता है वह एक ही इन्द्रिय इस अजितेन्द्रिय पुरुष की बुद्धि को हर लेता है। इसलिये हे अर्जुन! जिस पुरुष की इन्द्रियाँ विषयों से सर्वथा विमुख हो गई हैं उसकी बुद्धि स्थिर होती है। हे अर्जुन! जो सम्पूर्ण प्राणियों के

लिये रात्रि के समान है। उस नित्य शुद्ध बोधस्वरूप परमानन्द में संयमी (निगृहीतेन्द्रिय) पुरुष जागता है और जिस नाशशील क्षणभंगुर सांसारिक सुख में समस्त भूत प्राणी जागते हैं वह तत्वज्ञानी मुनि के लिये रात्रि के समान है। जैसे सब ओर से परिपूर्ण समुद्र में और नदियों के भी जल समा जाते हैं और वह समुद्र मर्यादा को नहीं छोड़ता उसी तरह समस्त सुख-भोग जिस स्थिर-बुद्धि पुरुष के प्रति किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं वह पुरुष परम शान्ति को पाता

है और भोग की इच्छा करनेवाले पुरुष को शान्ति नहीं मिलती है। जो पुरुष समस्त कामनाओं को छोड़कर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित होकर बर्तता है वह शान्ति को प्राप्त होता है। हे पार्थ! यह ब्राह्मी स्थिति (ब्रह्म प्राप्त करानेवाली निष्ठा) मैंने तुमसे कही है। जो इस ब्रह्मनिष्ठा को प्राप्त कर लेता है वह फिर संसार रूप मोह में नहीं पड़ता और अन्तकाल में भी इस निष्ठा में स्थित होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद में सांख्ययोग नामक दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।



श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

द्वितीय अध्याय का माहात्म्य

श्रीशङ्कर भगवान् से पार्वती जी ने पूछा कि हे भगवन् ! अब आप श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय का माहात्म्य कहिये। श्रीशङ्कर भगवान् ने पार्वती जी से कहा कि हे देवि ! बहुत बड़ा माहात्म्य है, तुम सावधान होकर सुनो। तुम्हारे समान जब द्वितीय अध्याय के माहात्म्य सुनने की इच्छा श्रीलक्ष्मी जी को हुई तब श्रीविष्णु भगवान् बोले कि हे देवि ! तुमने बहुत सुन्दर बात पूछी है, पवित्र कर्म करनेवालों की चर्चा करने में पापों का नाश हो जाता है। एक समय दक्षिण देश में पूरन नाम का एक बहुत रमणीक नगर था। उस नगर में सुशर्मा नाम का एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। वह ब्राह्मण साधुसेवा, अतिथिसत्कार, पूजन, हवन, श्राद्ध-तर्पण के द्वारा देवता-पितरों का सेवन हमेशा करता था। एक दिन वह ब्राह्मण तीर्थयात्रा के लिये प्रयाग को गया। वहाँ पर कुम्भपर्व के समय बहुत से साधु महात्मा इकट्ठा होकर ईश्वर के विषय में चर्चा

कर रहे थे। सुशर्मा ने उन महात्माओं को प्रणाम किया और अवसर मिलने पर प्रश्न किया कि हे महात्मा लोग ! मैंने बाल्यावस्था से ही सत्कर्म किया और आज तक मुझसे कोई भी बुरा कर्म नहीं हुआ, परन्तु इन सत्कर्मों के करने पर भी मुझे अशान्ति बनी रहती है और अशान्त चित्त होने से किसी विषय का निश्चय ज्ञान भी होने नहीं पाता और निश्चय ज्ञान के न होने से परम आनन्द का लेशमात्र भी सुख होने नहीं पाता। आप महात्माओं से सविनय प्रार्थना है कि जिस उपाय के करने से मुझे परम सुख का लाभ हो आप लोग उसे कहिये। क्योंकि महात्माओं के संसर्ग तथा अनुग्रह से ही सब कष्ट दूर हो जाते हैं। कहा भी है कि—"एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध। सेवा संगत साधु की हरे कोटि अपराध ॥" अब मेरी प्रार्थना पर कृपाकर मेरा उद्धार करें। महात्माओं ने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुम श्री मद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय का नित्य पाठ किया करो। पाठ के करने से तुमको सब सुख होगा। इस विषय में एक प्राचीन इतिहास तुमसे कहते हैं, तुम सावधान होकर सुनो। एक समय प्रतिष्ठान नगर

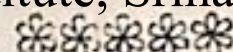


दूसरा अध्याय का महात्म सनने से शेर बकरी व देवसु शर्मा की मुक्ति हुई।

में एक दुर्दम नाम का राजा रहता था। राजा के राज्य में विक्रमशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था। वह ब्राह्मण राजा दुर्दम का आश्रित था और राजा के यहाँ से उस ब्राह्मण का जीवन-निर्वाह होता था। दूसरों के लिये दिया गया राजा का धान्य स्वयं खा जाने के पाप से मरने पर यमदूत ने उस ब्राह्मण को यमराज के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। यमराज की आज्ञा से नरक-यातना भोगकर जब फिर मनुष्य शरीर में जन्म मिला तब युवा अवस्था होने पर पूर्व-पाप के कारण उसका विवाह एक दुष्ट कर्कशा नाम की व्यभिचारिणी स्त्री से हुआ। एक दिन उस कर्कशा ने यार के कहने से अपने ब्राह्मण पति का सिर सोते समय काटकर उसका वध कर दिया। मरने के बाद वह प्रेत होकर वनों में भ्रमण करता था और उसकी व्यभिचारिणी कर्कशा नाम की स्त्री मरने के बाद बकरी हुई। एक दिन वन में प्रेत ने बकरी को देखा और पूर्वजन्म के वध का बदला लेने के विचार से मारने को दौड़ा, परन्तु वह बकरी प्रेत को मारने के लिये तत्पर देखकर भी जहाँ की तहाँ खड़ी रही, और तनिक भी भयभीत नहीं

हुई। प्रेतराज भी उस स्थान तक जाकर रुक गया और उसकी बकरी को मारने की इच्छा भी जाती रही। उस स्थान में एक महात्मा अपनी कुटिया में बैठकर श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय का पाठ कर रहे थे, जिसके शब्द कानों में पड़ने से बकरी और प्रेतराज का विचार उत्तम हो गया और परस्पर दोनों का वैरभाव भी छूट गया तथा उसी आश्रम के समीप रहकर नित्य गीता के दूसरे अध्याय का पाठ श्रवण करने लगे। नित्य पाठ के श्रवण से मरने पर बकरी और प्रेतराज विष्णुलोक को गये। इस इतिहास को सुनाकर प्रयाग के महात्माओं ने सुशर्मा से कहा कि हे सुशर्मा तुम भी प्रतिदिन श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय का पाठ करो। सुशर्मा ने महात्माओं के उपदेश से गीता का पाठ आरम्भ कर दिया और गीता के प्रभाव से इस लोक के सब सुख भोगने के बाद वैकुण्ठलोक प्राप्त किया।

द्वितीय अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।



श्रीमद्भगवद्गीता—भाषा

कर्मयोग नामक तृतीय अध्याय का कथा-प्रसङ्ग

दूसरे अध्याय में श्रीकृष्ण ने आत्मतत्वनिरूपण करते हुए सांख्ययोग का प्रतिपादन किया और समत्व-बुद्धिरूप कर्मयोग का वर्णन किया तथा समत्वबुद्धिरूप कर्मयोग के द्वारा परमात्मा को प्राप्त हुए स्थितप्रज्ञ पुरुष के लक्षण, आचरण और महत्व का वर्णन किया, परन्तु अर्जुन का सन्देह दूर न हुआ इसलिये पुनः श्रीकृष्ण भगवान् से प्रश्न करते हैं।

अर्जुन बोले कि हे जनार्दन! यदि कर्मों की अपेक्षा ज्ञान ही आपको श्रेष्ठ माननीय है तो फिर हे केशव! मुझे हिंसात्मक भयंकर कर्म में क्यों लगाते हैं। आप कभी कर्म की और कभी ज्ञान की प्रशंसा करते हैं। इस तरह संदेहजनक, मिले हुये वचनों से मेरी बुद्धि को मोहित-सी करते हैं। आप निश्चय करके एक बात कहिये जिससे मेरा कल्याण हो। श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे अर्जुन! मैंने दो प्रकार की निष्ठा (स्थिति) कही है। एकतो ज्ञान-योग के द्वारा सांख्य (शुद्धान्तःकरण) जनों की और

निष्कामकर्म के द्वारा कर्मयोगियोंकीकहीहै। हे अर्जुन! बिना नित्य नैमित्तिक कर्म किये अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती और बिना अन्तःकरण-शुद्धिके ज्ञानलाभनहीं होता और बिना ज्ञान लाभ के मोक्षलाभ नहीं होता। यदि कर्म को छोड़कर शिखा सूत्र त्यागकर बिना चित्तशुद्धि के संन्यास ग्रहण कर लेता है तो भी मोक्ष प्राप्ति नहीं होती है। निःसन्देह कोई भी पुरुष किसी अवस्था में क्षणमात्र भी बिना कर्म के नहीं रह सकता, क्योंकि समस्तप्राणी प्रकृति के गुणों के आधीन होकर कर्म करते ही रहते हैं जो मूढ़

पुरुषकर्मेन्द्रियों को हठपूर्वक केवल ऊपर से दबाकर मन से भगवद्-ध्यान के छल से इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता है उसे लोग मिथ्याचार (कपटाचार, दाम्भिक, मक्कार) कहते हैं। जो पुरुष मन से ज्ञानेन्द्रियों को दबाकर फल के विषय में अनासक्त होकर उसे ईश्वर की तरफ झुकाकर कर्मेन्द्रियों से स्मार्त नित्य नैमित्तिक कर्मों को चित्तशुद्धि के लिये करता है, वह श्रेष्ठ पुरुष है। तुम सन्ध्योपासना आदि कर्म को नित्य करो, कारण कि बिल्कुल कर्म न करने से कर्म करना श्रेष्ठ है। यदि सर्वथा

कर्मों का त्याग ही कर दोगे तो शरीर की रक्षा भी न हो सकेगी। ईश्वर के निमित्त कर्म को छोड़कर दूसरे कर्म बन्धन को देनेवाले हैं, इसलिये फल की इच्छा त्यागकर कर्मको करो। ब्रह्मा ने कल्प के आदि में ब्राह्मण आदि प्रजा को उत्पन्न करके कहा कि यज्ञ-यागादि कर्म के द्वारा तुम्हारी वृद्धि होगी और इच्छित फल का लाभ भी होगा। तुम यज्ञ के द्वारा देवताओं की वृद्धि करो और देवता लोग वृष्टि करके अन्न की उपज द्वारा तुम्हारी वृद्धि करें। इस तरह परस्पर वृद्धि करते रहने पर परम कल्याण के भागी होओगे।

यज्ञ के द्वारा बढ़ाये गये देवता लोग बिना माँगे तुम लोगों को इच्छित सुखभोग देते रहेंगे, परन्तु जो बिना पञ्चयज्ञ आदि कर्मों के भोजन करता है वह सचमुच चोर है। जो वैश्वदेव आदि यज्ञ करके शेष अन्न को खाते हैं, वे प्राणी पञ्चसूना (कण्डनी, पेषणी, चुल्ही, उदकुम्भी, मार्जनी) के समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो केवल स्वयं भोजन करने के लिये पकाते हैं, वैश्वदेव नहीं करते हैं, वे दुराचारी पाप को खाते हैं। अन्न (शुक्र शोणित रूप में परिणत अन्न) से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, वृष्टि से अन्न

उत्पन्न होता है, यज्ञ से वृष्टि होती है और वह यज्ञकर्म (यजमानादि के व्यापार) से उत्पन्न होता है, तथा वेद से यज्ञकर्म उत्पन्न होता है और अक्षर (परब्रह्म) से वेद प्रकट होता है। इसलिये सर्वव्यापक अविनाशी जो पर-ब्रह्म है वह सर्वदा यज्ञ में ही स्थित रहता है। अतः यज्ञादि कर्म अवश्य कर्तव्य है। जो पुरुष इस लोक में इस पूर्वोक्त प्रकार से प्रवर्तित सृष्टिचक्र के अनुकूल नहीं बरतता वह इन्द्रियों के द्वारा भोगों में रमण करनेवाला, पापस्वरूप आयुवाला पुरुष व्यर्थ ही जीता है। जो आत्मा में रमण

करता है, आत्मसुख से तृप्त रहता है और आत्मा में सन्तुष्ट रहता है अर्थात् सांसारिक सुखभोग की चाहना नहीं करता है उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं। ऐसे महा-पुरुष का इस लोक में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मों के फल से ही प्रयोजन रहता है। तथा इसका प्राणियों में भी कुछ भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं है तो भी वह केवल लोक के कल्याणार्थ कर्म करता ही है इसलिये फल में आसक्ति रहित होकर आवश्यक नित्य नैमित्तिक कर्म को अच्छी तरह करो,

क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्मों को करता हुआ ज्ञान द्वारा परम मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। जनक आदि ज्ञानी लोगों ने फल में अनासक्त होकर कर्म के द्वारा ही उत्तम सिद्धि (सम्यक् ज्ञान) को प्राप्त किया। अतः लोक को धर्म में प्रवृत्त करने के लिये तुम भी कर्म करो। बड़े लोग जो कुछ आचरण करते हैं उसको देखकर दूसरे लोग भी उसके समान आचरण करते हैं। वे जिस कर्मशास्त्र या निवृत्तिशास्त्र को प्रमाण मानते हैं, लोक भी उसी का अनुकरण करता है यद्यपि मुझको कोई कर्तव्य

नहीं है और न मेरे लिये त्रैलोक्य में कोई वस्तु अप्राप्य है, फिर भी में कर्म करता ही रहता हूं। यदि मैं सावधानी के साथ कर्मों को न करूँ तो सभी लोग मेरी नकल करने लग जायँगे तथा कर्मों को छोड़ देने से नष्ट हो जायँगे, बाद वर्णसंकर जाति पैदा होगी और मैं वर्णसंकरता का करनेवाला बनूँगा तथा प्रजाओं के अधःपतन का भी कारण बनूँगा। जैसे कर्म में आसक्त होकर अज्ञानी लोग कर्म करते हैं, वैसे ही कर्म में अनासक्त होकर ज्ञानी लोग भी

लोकसंग्रहार्थ कर्म को करें। अज्ञानियों को भ्रम (कर्म में अश्रद्धा) उत्पन्न हो, इसलिये स्वयं तत्परता के साथ कर्मों को करता हुआ उन अज्ञानियों से भी कर्म कराता रहे। ऐसा न करने से कर्म में अश्रद्धा और ज्ञान की अप्राप्ति होने से अज्ञानी लोग दोनों से गिर जायँगे। वास्तव में सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों (इन्द्रियों) द्वारा किये जाते हैं, परन्तु अज्ञानी पुरुष 'मैं करता हूँ' ऐसा मान लेता है। जो इस गुण और कर्मों के विभाग का वास्तविक तत्त्व जानता है वह कर्तृत्वाभिमान में

नहीं पड़ता, क्योंकि वह ज्ञानी पुरुष जानता है कि गुण (इन्द्रियाँ) गुणों (विषयों) में बर्तते हैं, ऐसा मानकर वह उनमें आसक्त नहीं होता है। जो प्रकृति के गुणों से मोहित गुण और कर्मों में आसक्त रहते हैं, ऐसे मूर्खों को ज्ञान की बातें बताकर ज्ञानी लोग उनकी बुद्धि में भ्रम पैदा न करें। मैं परमात्मा का अंश हूँ और उसी की प्रेरणा से कर्म करता हूँ, ऐसा निश्चय कर जो कुछ कर्म करो उसको मुझे समर्पित कर दो और फल की आशा छोड़ दो तथा अहंकार का त्याग करो और शोक-रहित होकर

युद्ध करो। जो लोग मेरे वचन में श्रद्धा करके दोष-बुद्धि और मात्सर्य-रहित होकर मेरे मत का अनुसरण करते हैं वे लोग कर्मों को करते हुए ज्ञानी के समान कर्मों से मुक्त हो जाते हैं। जो लोग मेरे इस 'ईश्वर के लिये कर्म करना' अनुशासन की निन्दा करते हैं और मेरे मत के अनुसार नहीं वर्तते हैं उनको सब प्रकार के ज्ञान से शून्य (नष्ट) समझो। प्राचीन कर्मों के संस्कारानुसार कर्मों के वश में होकर और गुण-दोष को जानकर ज्ञानी पुरुष भी कर्म करता है तो अज्ञानी पुरुष अपने स्वभाव के अनुसार कर्म

करता है इसमें कहना ही क्या है और इस विषय में हठ करनेसे भी क्या होगा। सभी इन्द्रियाँ अपने २ विषय में प्रेम और विपरीत होने से द्वेष करती हैं। प्राणियों को उनके वश में न होना चाहिये, क्योंकि राग और द्वेष दोनों ही मोत्तमार्ग में शत्रु कहे गये हैं। अतः राग-द्वेष को जीतकर अपने धर्म का पालन करना ही श्रेष्ठ है और अपने धर्म में मृत्यु होना भी अच्छा है, क्योंकि स्वधर्म में स्वर्गसुख मिलता है और दूसरे का धर्म नरक को देनेवाला है। इसके बाद अर्जुन बोले कि हे कृष्ण ! इच्छा

न रहते हुए भी विवश होकर प्राणी किसकी प्रेरणा से पापकर्म को करता है, काम क्रोध को रोकने पर भी प्राणी की पाप में बारम्बार प्रवृत्ति देखी जाती है। श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे अर्जुन ! रजोगुण से उत्पन्न होनेवाले ये काम और क्रोध प्राणी को पाप में लगाते हैं, और ये काम क्रोध बहुत भोजन करते हैं, तथा बहुत बड़े पापी हैं, इनको मोक्ष (कल्याण) मार्ग में शत्रु समझो। जैसे साथ उत्पन्न धूम से अग्नि ढकी रहती है, और आगन्तुक मैल से दर्पण (शीशा) ढका रहता है, तथा गर्भवेष्टन चर्म

(झिल्ली) से गर्भ ढका रहता है उसी तरह काम से यह विवेक ज्ञान ढका है। यह काम अज्ञानी को भोग के समय सुख और परिणाम (अन्त) में दुःख देता है, किन्तु ज्ञानी को इसके द्वारा होनेवाले अनर्थ का अनुभव होने से भोग–समय में भी काम से दुःख ही होता है। इन्द्रियाँ और मन तथा बुद्धि इस काम के वासस्थान हैं और यह काम इन्द्रिय, मन और बुद्धि के द्वारा ही ज्ञान को ढककर जीवात्मा को मोहित (मूढ़) कर देता है। विमोह होने के पूर्व मन बुद्धि

और इन्द्रियों को अपने वश में करके ज्ञान और विज्ञान को नष्ट करनेवाले इस पापी काम को मारो। इन्द्रियाँ सूक्ष्म और प्रकाशक होने के कारण देहादि से श्रेष्ठ और भिन्न हैं तथा इन्द्रियों का प्रवर्तक संकल्पात्मक जो मन है वह इन्द्रियों से श्रेष्ठ और भिन्न है और मन से निश्चयात्मिका बुद्धि श्रेष्ठ और भिन्न है तथा बुद्धि से भी श्रेष्ठ तत्साक्षित्वेन स्थित जो सर्वान्तर्यामी आत्मा है वह जीवात्मा को मोहित कर देता है। हे अर्जुन ! विषय इन्द्रिय के सम्बन्ध से उत्पन्न कामादि विकार बुद्धि के धर्म

हैं, आत्मा निर्विकार और उसका साक्षी है तथा बुद्धि से परे है, ऐसा जानकर निश्चयात्मिका बुद्धि से मन को निश्चल कर दुरासद (दुर्विज्ञेय) गति कामरूप शत्रु को मारो।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद में कर्मयोग नामक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ।



श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

तृतीय अध्याय-माहात्म्य

पार्वती जी ने श्री शंकर भगवान् से और लक्ष्मी जी ने श्री विष्णु भगवान् से पूछा कि हे प्रभो ! अब आप श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय का माहात्म्य कहिये। श्री शंकर भगवान् ने पार्वती जी से और श्री विष्णु भगवान् ने लक्ष्मी जी से कहा कि हे देवि ! तृतीय अध्याय् का मांहात्म्य मन लगाकर सुनिये। कौशिक वंश में होनेवाला जड़ नाम का ब्राह्मण हुआ। वह वेदशास्त्र का विद्वान् होकर भी अपने धर्म-कर्म से गिर गया था। अनेक व्यापारों के द्वारा बहुत धन होने पर वह दुर्व्यसनी हो गया और वह ब्राह्मण जूआ शराब वेश्यागमन आदि सभी दुष्कर्म करता था। जब इन कर्मों में पास का धन समाप्त हो गया तब उसने चोरी करना शुरू किया और चोरी करके बहुत-सा धन इकट्ठा किया। एक दिन कुछ छिछोरों ने इसके पास चोरी का काफी धन सञ्चय देखा और आपस में सलाह कर इसके घर पर जाकर रात्रि के समय जड़ नामक ब्राह्मण को जान से मार डाला और उसका धन उठा ले गये। जड़ नामक

ब्राह्मण मरने के बाद बहुत भयानक प्रेत हुआ। प्रेतयोनि में अपने कर्मानुसार वह दारुण दुःख भोगने लगा। तमोगुण बढ़ जाने से मोह के कारण गन्ध, रस और स्पर्श तक का ज्ञान उसे न रह गया और देहान्त करनेवाले दाह से पीड़ित हो गया। पुत्र उसका मोह नाम का था; वह व्यापार के लिये देशान्तर में ही रहा करता था। अधिक दिन बीत जाने पर जब लड़का देशान्तर से लौटकर आया और अपने पिता के मरने का समाचार सुना तब वह बहुत दुखी हुआ। पण्डितों के कथनानुसार पिता की परलोकक्रिया की, परन्तु पिता का प्रेतयोनि से उद्धार न हुआ। एक दिन रात्रि के समय उस ब्राह्मणपुत्र के यहाँ उसका मित्र आया। प्रातःकाल होने पर उस मित्र ने स्नान-सन्ध्योपासन करने के बाद श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय का पाठ किया। उसी समय वह जड़ नामक ब्राह्मण प्रेतयोनि से मुक्त हो गया और उसके लिये सुन्दर विमान आया देखकर दिव्य देह धारण कर अप्सरागणों से युक्त विमान पर स्वागत के साथ जा बैठा। जब वैकुण्ठलोक को विमान चलने को तैयार



प्रेत की तृतीय अध्याय सुनने से मुक्ति

हुआ तब पुत्र ने अपने पिता को प्रणाम किया और उससे प्रेतयोनि से मुक्त होने का कारण पूछा। पिता ने पुत्र से कहा कि हे पुत्र ! आज तुम्हारा जो मित्र आया है उसने श्रीमद्भगवद्गीता के तृतीय अध्याय का पाठ किया, उसी पाठ के श्रवण से मेरी सद्गति हुई। परन्तु अभी मेरा भाई मेरे समान पापी नरक में दुःख भोग रहा है। उसके तथा और भी मेरे पूर्वज जो नरक में पड़े दुःख भोग रहे हैं उनके उद्धार के लिये तुम श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय का पाठ करो और उसका पुण्य संकल्प करके उनको दे दो तो उनका भी मेरे समान उद्धार हो जायगा। पुत्र को यह उपदेश देकर वह वैकुण्ठलोक को चला गया। उसके चले जाने पर पुत्र ने श्रीमद्भगवद्गीता के तृतीय अध्याय का पाठ करके उसके पुण्य के द्वारा शेष पूर्वजों का भी उद्धार कर दिया और अपने मित्र के साथ वह ब्राह्मणपुत्र भी मरने पर वैकुण्ठलोक को चला गया।

तृतीय अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता—भाषा

ज्ञानयोग नामक चतुर्थ अध्याय का कथा-प्रसंग

तृतीय अध्याय में श्रीकृष्ण भगवान् ने विहित कर्मों के पालन करने का उपदेश देकर भक्ति प्रधान कर्मयोग की विधि से ममता, आसक्ति और कामना हर प्रकार से त्याग करके श्रीकृष्णार्पण बुद्धि से काम करने की आज्ञा दी। शास्त्रविहित कर्मों के आचरण करनेवालों की प्रशंसा और न करनेवालों की निन्दा करके राग-द्वेष के वश में न होकर स्वधर्म-पालन करने के लिये जोर दिया। तथा

काम को सब अनर्थों का कारण बतलाकर बुद्धि के द्वारा इन्द्रियों और मन को वश में करके उसे दमन करने का उपदेश देकर अध्याय समाप्त किया। परन्तु कर्मयोग बहुत कठिन विषय है, इसलिये अब भगवान् फिर उसके सम्बन्ध में बतलाने के उद्देश्य से उसीका प्रकरण आरम्भ करते हुए कर्मयोग की परम्परा द्वारा उसकी अनादिता सिद्ध करते हुए प्रशंसा करते हैं।

श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे अर्जुन! मैंने इस अवि-नाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत

मनु से कहा और वैवस्वत मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा। इस प्रकार क्रम से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना, परन्तु बहुत समय हो जाने के कारण वह योग इस लोक में नष्ट (विच्छिन्न) हो गया है, जिसको इस समय मैंने तुमसे कहा है। तुम मेरे भक्त और सखा हो। दूसरे के लिये मैं इसे नहीं कहता, क्योंकि यह श्रेष्ठ रहस्य है। अर्जुन बोले कि हे कृष्ण! आपका जन्म तो अब हुआ है और सूर्य का जन्म बहुत पहले हुआ। आधुनिक आपने चिरन्तन सूर्यनारायण के लिये इस योग को पहिले (कल्प

के आदि में) कहा, इस बात को मैं कैसे जानूँ। श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे अर्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुत-से जन्म व्यतीत हो गये, उन सबको तुम भूल गये और मैं जानता हूँ। कारण कि तुम अज्ञान से आवृत (ढके) हो और मैं अलुप्त ज्ञानशक्ति से सम्पन्न हूँ। मैं प्राकृत मनुष्यों के समान नहीं हूँ। मैं यद्यपि अजन्मा, अविनाशी और प्राणियों का ईश्वर हूँ, तथापि अपनी शुद्ध सात्त्विक प्रकृति का अवलम्बन कर विशुद्ध बलवती सत्त्वमूर्ति से स्वेच्छापूर्वक अवतार लेता हूँ। जब जब धर्म

की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ। अपने अपने धर्म में निरत साधु पुरुषों को रक्षा के लिये और दुष्ट कर्म करनेवालों को नाश करने के लिये तथा धर्म की स्थापना (स्थिर) करने के लिये युग युग (तत्तत् समय) में प्रकट होता हूँ। मेरा स्वेच्छा से जन्म और धर्मपालनरूप जो कर्म हैं वे अलौकिक और दूसरों के कल्याण के लिये होते हैं। इस बात को जानने-वाला पुनर्जन्म का भागी नहीं होता, किन्तु मुझे ही प्राप्त हो जाता है। बहुत से लोग राग, भय और क्रोध को त्याग

कर अनन्यभाव से मेरा आश्रय लेकर ज्ञान और तप से पवित्र होकर मुझमें मिल गये। जो जिस सकाम या निष्काम भाव से मेरा भजन करते हैं मैं भी उनको उसी भावसे फल देता हूँ। समस्त मनुष्य मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं अर्थात् जिस किसी की सेवा करें वह मेरी ही सेवा होगी। प्रायः इस मनुष्यलोक में कर्मफल की आकांक्षा से इन्द्र आदि देवताओं की पूजा करते हैं क्योंकि इस लोक में कर्म से होनेवाली सिद्धि शीघ्र होती है और ज्ञान का जो कैवल्य (मोक्ष) फल है वह तो कठिनाई से

प्राप्त करने योग्य है। गुण और कर्मों के विभागानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों की रचना मैंने की है, अर्थात् सत्त्वप्रधान ब्राह्मण और शम दम आदि कर्म, सत्वरजःप्रधान क्षत्रिय और शौर्य युद्ध आदि कर्म, रजस्तमःप्रधान वैश्य और कृषि वाणिज्य आदि कर्म तथा तमःप्रधान शूद्र और उपर्युक्ततीन वर्णोंकी सेवा आदि कर्म, इनको मैंने रचाहै, परन्तु कर्ता होने पर भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तुम अकर्ता ही जानो। निरहंकार होने से कर्म मुझको नहीं बाँधते और आप्तकाम होने से

मेरी कर्मों में इच्छा भी नहीं है। इस तरह जो अच्छी तरह से मुझको जानता है, वह भी कर्म बन्धन में नहीं पड़ता क्योंकि निरहंकार भाव से किया कर्म बन्धक नहीं होता। इस सिद्धान्त के अनुसार जनक आदि मुमुक्षु जनों ने सत्वशुद्धि के लिये अन्य युग में भी कर्म किया था इसलिये प्रथम तुम भी कर्म को ही करो। कैसा कर्म करना चाहिये और कैसा नहीं करना चाहिये, इस विषय में विवेकी पुरुषों को भी मोह हो गया और कर्म अकर्म का ज्ञान न हुआ। इसलिये जिसके अनुष्ठान से अशुभ

(संसार) से तुम मुक्त होगे उस कर्म के विषय में मैं तुम से कहूँगा, श्रवण करो। कर्म अकर्म और विकर्म का लक्षण भी जानना चाहिये, क्योंकि कर्म, अकर्म और विकर्म की गति बहुत गहन है। जो परमेश्वराराधनरूप कर्ममें अकर्म (यह कर्म नहीं है) देखता है क्योंकि परमेश्वराराधनरूप कर्म ज्ञान का कारण होनेसे उसमें बन्धकत्व नहीं है और अकर्म (शास्त्रविहित के त्याग) में कर्म (कर्तव्य है) देखता है क्योंकि शास्त्रविहित का त्यागरूप अकर्म दोष का कारण होनेसे उसमें बन्धकत्व है, इसतरह देखनेवाला

वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है और वह योगी समस्त कर्मों का करनेवाला है। जो बिना किसी कामना के सम्पूर्ण कर्मों को करता है और जिसके सम्पूर्ण कर्म ज्ञानरूपी अग्नि से भस्म हो गये हैं उसे विद्वान् लोग पण्डित (सत् असत् विचारवान्) कहते हैं। जो कर्म और कर्मफल में इच्छा नहीं करता, निजानन्द से तृप्त रहता है और किसी का आश्रय ग्रहण नहीं करता है वह स्वाभाविक और शास्त्रविहित कर्म को करता हुआ भी कुछ नहीं करता है। जो सब आशाओं को त्यागकर अन्तःकरण और शरीर

को वश में कर सब झगड़ों को छोड़कर केवल शरीर के निर्वाहमात्र उपयोगी कर्म को करता है वह पाप का भागी नहीं होता है। जो स्वयं आई हुई वस्तु के लाभ से सन्तुष्ट रहता है और शीत उष्ण, सुख-दुःख, हानि-लाभ को भी एक-सा देखता है तथा किसी के साथ मत्सरता (डाह) नहीं करता, और सिद्धि-असिद्धि में समान बुद्धि रखता है, वह कर्मों को करके भी कर्मबन्धन में नहीं बँधता है। क्योंकि जो निष्काम (स्त्री पुत्र आदि सांसारिक कामना से रहित) है और राग-द्वेषसे मुक्त है तथा ज्ञान में दत्तचित्त

है और परमेश्वर के लिये कर्म करता है उसके सम्पूर्ण कर्म वासना के साथ विलीन हो जाते हैं। जो अर्पण (स्रुवा आदि) को भी ब्रह्म, हवि (घृत आदि) को भी ब्रह्म, अग्नि को भी ब्रह्म, हवनकर्ता को भी ब्रह्म मानता है अर्थात् होम, अग्नि, कर्ता और क्रिया सबको ब्रह्मस्वरूप में देखता है और जिसकी ब्रह्मस्वरूप कर्म में चित्तवृत्ति है, वह अवश्य ब्रह्म को प्राप्त होता है। कितने कर्मयोगी श्रद्धापूर्वक इन्द्रादि देवताओं की पूजा करते हैं और दूसरे ज्ञानयोगी ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्मयज्ञरूप से हवन करते

हैं अर्थात् यज्ञादि समस्त कर्मों को ब्रह्म में विलीन कर देते हैं इसीका नाम ज्ञानयज्ञ है। जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं वे लोग तत्तत् इन्द्रियसंयमरूप अग्नि में नेत्र, कर्ण आदि इन्द्रियों को होम (विलीन) कर देते हैं अर्थात् इन्द्रियों को रोककर संयम-प्रधान रूप से रहा करते हैं और दूसरे गृहस्थ लोग इन्द्रियरूप अग्नि में शब्दादि विषयों को होम (विलीन) कर देते हैं अर्थात् भोग के समय भी अनासक्त होकर इन्द्रियों में अग्नि की भावना और शब्दादि विषयों में हवि की भावना

कर इन्द्रियरूपी अग्नि में शब्दादि विषयरूपी हवि का हवन करते हैं। और ध्याननिष्ठ (परमेश्वर के चिन्तन में लीन) लोग समस्त ज्ञानेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय के कर्मों को, समस्त कर्मेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के कर्मों को प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय इन दस वायु के कर्मों को आत्मसंयम (ध्यानैकाग्र्य) रूप अग्नि में ज्ञान (ध्येय विषय) से प्रदीप्त प्रकाश में ध्येय का निश्चय कर उस ध्येय में मन को एकाग्र कर समस्त कर्मों को होम कर

देते हैं। कुछ लोग द्रव्ययज्ञ हैं अर्थात् धनादि द्रव्यों के दान को ही यज्ञ मानते हैं, कुछ लोग तपोयज्ञ हैं अर्थात् कृच्छ्र चान्द्रायणादि तप को ही यज्ञ मानते हैं, कुछ लोग योगयज्ञ हैं अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोधरूप जो समाधि है उसीको यज्ञ मानते हैं, कुछ स्वाध्याययज्ञ हैं, अर्थात् वेदपाठ करना ही यज्ञ मानते हैं, कुछ ज्ञानयज्ञ हैं अर्थात् वेदार्थ का ज्ञान ही यज्ञ मानते हैं, इस तरह प्रयत्नशील होकर अपने अपने व्रत को तीक्ष्ण (तीखा) बना रक्खा है। दूसरे कुछ लोग अपान में प्राण को

और प्राण में अपान को तथा प्राण अपान की गति को रोककर इस तरह पूरक, कुम्भक और रेचक उपायों से प्राणायाम में तत्पर रहा करते हैं। कुछ लोग नियताहार होते हैं अर्थात् आहार को कम करके निर्बल इन्द्रियों में तत्तत् (उस उस) इन्द्रिय के व्यापार का हवन कर देते हैं, ये सभी सब प्रकार के यज्ञों को करनेवाले यज्ञसाधन (यज्ञसामग्री) से हवन कर अपने-अपने पापों का नाश करते हैं। जो लोग यज्ञ को करके शेष अमृततुल्य अन्न का भोजन करते हैं वे लोग यज्ञशेष भोजन के द्वारा

ज्ञानलाभ कर सनातन ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं। जो लोग यज्ञ को नहीं करते हैं उनको न यह लोक है और न परलोक ही है। ऐसे बहुत प्रकार के यज्ञ वेद में विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। इन सब की उत्पत्ति कर्म से है, ऐसा जानने से तुम्हारी मुक्ति हो जायगी। द्रव्ययज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है क्योंकि जितने कर्म हैं वे सब ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं अर्थात् वे सभी कर्म अपने फलों के साथ ज्ञान में ही लीन हो जाते हैं। उस ज्ञान को तत्त्ववेत्ता ज्ञानी पुरुषों से, भली भाँति दण्डवत् प्रणाम, सेवा,

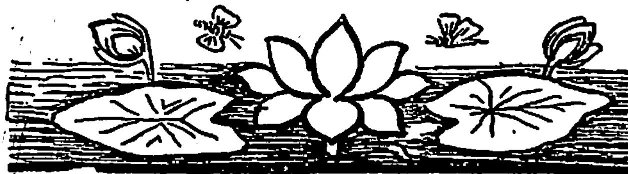
परिप्रश्न से अर्थात् यह संसार मुझे कैसे हुआ और कैसे दूर होगा इत्यादि प्रश्न करके समझो। वे तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुष तुम्हें उस ज्ञान का उपदेश करेंगे। यह ज्ञान प्राप्त करने से तुमको ऐसा मोह फिर कभी न होगा और इसी ज्ञान से सम्पूर्ण प्राणियों को अपनी आत्मा में और मुझ परमात्मा में भी अभेद भाव से देखोगे अर्थात् भेदबुद्धि छूट जायगी। यद्यपि तुम सभी पापकर्मियों से अधिक पाप करनेवाले हो, तथापि ज्ञानरूपी जहाज के द्वारा समस्त पापसमुद्र को अनायास पार कर जाओगे।

जैसे प्रज्वलित अग्नि काष्ठ को भस्म कर देता है, वैसे आत्मज्ञानरूपी अग्नि प्रारब्ध कर्म को छोड़कर सभी सञ्चित और क्रियमाण कर्मों को भस्म कर देता है। इस ज्ञान के समान शुद्ध करनेवाला दूसरा उपाय नहीं है। वह ज्ञान कुछ समय के बाद कर्मयोग के अभ्यास से अपने आप ही प्राप्त हो जाता है। गुरु के उपदेश में श्रद्धा करनेवाले, ज्ञान की प्राप्ति में तत्पर, जितेन्द्रिय पुरुष को ज्ञान मिलता है, इसलिये ज्ञानलाभ के पूर्व शुद्धि के लिये कर्मयोग करना चाहिये क्योंकि

ज्ञानलाभ के बाद तो उसे कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं रह जाता, ज्ञानलाभ कर शीघ्र ही मोक्ष को पा लेता है। जो गुरूपदिष्ट अर्थ को नहीं जानता, अज्ञ है, अश्रद्धा करता है, संदेह करता है वह नष्ट हो जाता है, क्योंकि संदेहशील को न तो इस लोक में और न परलोक में ही कुछ स्वार्थ है और न उसे सुख ही मिलता है। हे अर्जुन ! जिसने परमेश्वर के आराधन स्वरूप योग से समस्त कर्मों को ईश्वर के लिये अर्पण कर दिया है और जिसके सब संशय ज्ञानद्वारा दूर हो गये, ऐसे आत्मज्ञानी

पुरुष को कर्म नहीं बाँधते हैं। इसलिये तुम्हारे हृदय में अज्ञान से उत्पन्न जो संशय वर्तमान है, उस संशय को ज्ञानरूपी खड्ग से काटकर युद्ध करने के लिये खड़े हो जाओ ॥४२॥

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद में ज्ञानयोग नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ।



चतुर्थ अध्याय का माहात्म्य

श्रीशंकर भगवान् पार्वतीजी से और श्रीविष्णु भगवान् लक्ष्मीजी से कहते हैं कि हे देवि ! अब चतुर्थ अध्याय का माहात्म्य भी सावधान होकर सुनिये। इस अध्याय के पाठ-श्रवण से स्थावर योनि से भी जीव छूटकर उत्तम लोक को चला गया है। श्रीविश्वनाथजी की काशीपुरी में एक देवदत्त नामक ब्राह्मण रहता था। वह नित्य श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय का पाठ करता था। एक समय माघ के महीने में वेदव्यासजी के दर्शन को गंगा पार कर रामनगर को गया और वहाँ उसने एक कूप के जल से स्नान कर सन्ध्या-पूजन किया। उस कूप के समीप दो बेर के पेड़ आस-पास थे। उन पेड़ों के नीचे बैठकर उसने श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय का पाठ किया और भोजन-विश्राम कर अपने स्थान को चला आया। परंतु इस ब्राह्मण के चले आने के बाद वे बेर के वृक्ष गिर गये और वे दोनों वृक्ष-योनि से छूटकर काशी के एक ब्राह्मण के घर मनुष्य योनि में आकर कन्या हुईं।

एक दिन उन दोनों कन्याओं ने उस श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ करनेवाले ब्राह्मण को देखा और पूर्व के पुण्यप्रभाव से पूर्वजन्म का स्मरण हो गया। उन दोनों कन्याओं ने प्रणाम कर ब्राह्मण से कहा कि हे महाराज! आपकी कृपा से मेरा कष्ट दूर हो गया, और स्थावर योनि से छूटकर इस समय मनुष्ययोनि में जन्म मिला है, अब आप कृपा करके मेरा इस योनि से भी उद्धार कीजिये। कन्याओं के इस समाचार को सुनकर ब्राह्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ और ब्राह्मण ने उन कन्याओं से पूछा कि मैंने तुमको कैसे स्थावर योनि से मुक्त किया और तुमको स्थावर योनि में जन्म कैसे मिला? यह सब वृत्तान्त मुझसे कहो। कन्याओं ने कहा कि हे महाराज! आपने श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय का पाठ किया था। उसी पाठ-श्रवण के प्रभाव से हम दोनों का बेरवृक्ष-शरीर से उद्धार हुआ और उसी पुण्य से इस समय ब्राह्मण के घर में जन्म मिला तथा पूर्वजन्म का भी स्मरण बना है। इसके पूर्वजन्म में हम दोनों अप्सराएँ थीं। गोदावरी नदी के तट पर छिन्नपाप नामक स्थान में सत्यतपा नामक महर्षि तपस्या करते थे। उनकी तपस्या से अपने इन्द्रपद के हरण का भय करके इन्द्र ने हम दोनों



अध्याय चौथे में पाठी के देह स्पर्श से बेरियों की मुक्ति

की तप में विघ्न करने की आज्ञा दी। हम दोनों ने इन्द्र की आज्ञा से सत्यतपा महर्पि के आश्रम के पास जाकर मृदङ्ग आदि बाजे, मनोहर गान, हाव-भाव आदि के द्वारा महर्षि को तप से गिरा देने का बहुत कुछ उपाय किया। परंतु महर्षि असाधारण जितेन्द्रिय थे। हमारे उपाय सब व्यर्थ हो गये। और महर्षि ने ध्यानभङ्ग होने पर हम दोनों को शाप दे दिया कि तुम दोनों बदरी वृक्ष हो जाओ। मुनि के शाप से भयभीत होकर हम दोनों ने प्रार्थना की कि हे महर्षि ! इस योनि से हमारा उद्धार कीजिये, क्योंकि इसमें हम दोनों का विशेष अपराध नहीं है। महर्षि ने कहा कि जब भरत नामक मुनि आकर तुम्हारे समीप श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय का पाठ करेंगे तब उस पाठ के श्रवण करने से वृक्षयोनि से तुम्हारा उद्धार हो जायगा। इस प्रकार पूर्वजन्म का समाचार कहकर कन्याओं ने मुनि की पूजा की, मुनि अपने आश्रम को चले गये और दोनों कन्यायें गीतापाठ के प्रभाव से स्वर्ग को गईं।

श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता—भाषा

कर्मसन्यास योग नामक पञ्चम अध्याय का कथा-प्रसङ्ग

चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण भगवान् ने पुरुष के अवस्था-भेद से कर्मयोग और ज्ञानयोग की दो निष्ठा (स्थिति) कही। साथ ही यह भी कहा कि कर्मयोग के द्वारा भगवत्स्वरूप का तत्त्वज्ञान अपने आप हो जाता है और अन्त में कर्मयोग के सम्पादन की आज्ञा दी। परन्तु अर्जुन स्वयं इसका निर्णय नहीं कर सके कि दोनों में से कौन-सा साधन मेरे लिये श्रेष्ठ है। अतएव वे

श्रीकृष्ण भगवान् से प्रश्न करते हैं।

अर्जुन बोले कि हे श्रीकृष्ण ! आप कभी कर्मों के संन्यास (त्याग) की और कभी निष्काम कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। विरुद्ध स्वरूपवाले इन दोनों का साधन एक समय में एक व्यक्ति द्वारा नहीं हो सकता, इसलिये जो श्रेष्ठ उपाय हो उसे कहिये। श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे अर्जुन ! दोनों ही कल्याण करनेवाले हैं, परन्तु कर्मसंन्यास (कर्मत्याग) की अपेक्षा कर्मयोग (निष्काम कर्मयोग) श्रेष्ठ है। जो राग-द्वेष से रहित है और

परमेश्वर के लिये कर्मों को करता है तथा न किसी से द्वेष करता है और न किसी वस्तु की इच्छा करता है वह कर्मानुष्ठान-काल में भी संन्यासी है तथा शुद्धचित्त होकर ज्ञान द्वारा सुखपूर्वक इस संसाररूप बन्धन से मुक्त हो जाता है। हे अर्जुन ! सांख्य अर्थात् संन्यास और योग अर्थात् निष्काम कर्मयोग को बालक लोग ही भिन्न भिन्न फलवाले कहते हैं, न कि पण्डित लोग। दोनों में से एक का भी अच्छी तरह अनुष्ठान कर लेने से मनुष्य दोनों के फल का भागी हो जाता है। जो मोक्ष-

स्थान सांख्यों (ज्ञाननिष्ठों) अर्थात् संन्यासियों को मिलता है वही स्थान निष्कामकर्म योगियों को भी मिलता है। अतः समान फल होने से एकरूप देखना ही उत्तम देखना है। और निष्काम कर्मयोग के बिना संन्यास का होना असंभव है, तथा निष्काम कर्मयोग के द्वारा शीघ्र परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। जो निष्काम कर्मयोगी, शुद्धचित्त, जितेन्द्रिय, विजितात्मा और अपनी आत्मा को सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा से अभिन्न मानता है वह कर्मों को करता हुआ भी कर्म बंधन

में नहीं पड़ता है। निष्काम कर्मयोगी क्रम से तत्त्ववेत्ता होकर देखता, सुनता, स्पर्श करता, सूँघता, खाता, चलता, सोता, श्वांस लेता, बोलता, त्याग करता, ग्रहण करता, नेत्र खोलता और बन्द करता हुआ भी यही समझे कि मैं कुछ नहीं करता, किन्तु ये इन्द्रियाँ ही अपने अपने विषयों में तत्पर हैं, यह बुद्धि से निश्चय करे। जो कर्मों को परमेश्वर के लिये अर्पण कर और कर्मफलों में आसक्ति न रखते हुए कर्मों को करता है उसे पाप नहीं लगता, जैसे कमलपत्र जल में रहते हुए भी जल से

अलिप्त रहता है। इसलिये निष्काम कर्मयोगी फल में आसक्ति त्यागकर चित्तशुद्धि के लिये शरीर से स्नान आदि, बुद्धि से तत्त्वनिश्चय आदि और कर्मों में अभि-निवेश रहित इन्द्रियों से श्रवण-कीर्तन आदि कर्मों को करके मोक्ष को प्राप्त होते हैं परन्तु सकाम (बहिर्मुख) पुरुष फल में आसक्त होकर कर्मबन्धन में बंध जाता है। जो जितेन्द्रिय यतचित्त पुरुष सब कर्मों को मन से छोड़-कर ज्ञाननिष्ठ होकर सुखपूर्वक नौ द्वार (दो नेत्र, दो कान, दो नासिका, मुख ये सात और मलस्थान, मूत्रस्थान)

वाले शरीर में वास करता है, ममता-रहित होने से न तो स्वयं कुछ करता है और न अन्य से कुछ करवाता है। ईश्वर इस जीवलोक के प्राणियों के न कर्तापन को और न कर्मों को तथा न कर्मफल के सम्बन्ध को वास्तव में रचता है किन्तु ईश्वर के सकाश से इन सबको नचाने-वाली प्रकृति है अर्थात् जीव पूर्वजन्म के कर्मानुसार कर्म करने लगता है और ईश्वर केवल प्रयोजक (नियोक्ता) मात्र है। ईश्वर विभु (परिपूर्ण) है, वह किसी के पाप-पुण्य को नहीं लेता है इस जीव का ज्ञान अज्ञान द्वारा

ढका है, इसलिये जीव मोह को प्राप्त होता है और ईश्वर में वैषम्य (भेदबुद्धि) मानता है। जिनका अज्ञान नष्ट हो गया है उनको ज्ञान द्वारा परमेश्वर का साक्षात्कार वैसे ही होता है जैसे सूर्य से समस्त सृष्टि का। जिनकी परमात्मा में ही बुद्धि, मन, निष्ठा (स्थिति) और तत्परता है तथा उसकी कृपा से प्राप्त आत्मज्ञान से जिनके पाप नष्ट हो गये हैं वे आवागमन से रहित होकर मुक्ति के भागी होते हैं। जिनकी विद्याविनय से सम्पन्न ब्राह्मण में और कुत्ता, चाण्डाल, गौ, हाथी में समान दृष्टि होती है

वे लोग पण्डित और इसी जीवनकाल में संसार के विजेता कहे जाते हैं क्योंकि ब्रह्म सम और निर्दोष है और वे समदर्शी लोग ब्रह्म में ही स्थित रहते हैं। ब्रह्मवेत्ता लोग प्रिय वस्तु को पाकर प्रसन्न और अप्रिय वस्तु को पाकर अप्रसन्न नहीं होते हैं। उनको परमात्मा में एकीभाव से स्थित समझो। बाह्य इन्द्रियों के रूप रसादि विषयों में अनासक्त, अन्तःकरण में शान्तिसुख का अनुभवकर्ता पुरुष ब्रह्म में समाधि द्वारा एकताभाव को प्राप्त होकर अक्षय सुख का भी भागी होता है। इन्द्रिय और विषय-सम्बन्ध

से होनेवाला सुखस्पर्धा असूया आदि के साथ-साथ होने से दुःख ही देता है और नाशवान् है। इस विषय-सुख में विवेकी रमण नहीं करता है। काम क्रोध से उत्पन्न वेग को शरीर-नाश होने के पूर्व रोकनेवाला पुरुष योगी है और वही सुखी है। इसी बात को वसिष्ठजी ने भी कहा है—'प्राणे गते यथा देहःसुखं दुःखं न विन्दति। तथा चेत्प्राणयुक्तोऽपि से कैवल्याश्रयो भवेत्॥' जो अपनी आत्मा में ही सुख करता है, नाकि विषयों में। जो अपनी आत्मा में रमता है, न कि बाहर। जिसकी अन्तःकरण में ही दृष्टि

है, न कि गीत नृत्यादि में। ऐसा पुरुष परब्रह्म परमात्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है। जो सम्यक् द्रष्टा, क्षीणपाप, संशय-रहित, संयतचित्त और समस्त प्राणियों के हित में निरत हैं, वे कृपालु मोक्ष को पाते हैं। जो काम क्रोध से रहित, संन्यासी, स्वाधीन-चित्त और आत्मतत्त्व के ज्ञाता हैं उनको सर्वत्र (जीवन-काल और मरण-समय में भी) ब्रह्म की प्राप्ति होती है। हे अर्जुन! दृष्टि को भौंह के बीच में रखकर नासिका में विचरनेवाले प्राण अपान वायु को समान रखकर कुंभक-

रूप प्राणायाम को करता है और इन्द्रिय मन बुद्धि के स्वाधीन होने पर जो मोक्ष में परायण होकर परमेश्वर के चिन्तन में तत्पर रहता है तथा इच्छा भय क्रोध से रहित है वह सर्वदा मुक्त ही है। जो मुझको समस्त यज्ञों और तपों का भोक्ता तथा समस्त लोकों का महान् ईश्वर और सुहृद् (निःस्वार्थ प्रेमी) जानता है वह मेरे प्रसाद से मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद में कर्मसंन्यासयोग नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

पञ्चम अध्याय का माहात्म्य

श्रीशंकर भगवान् पार्वतीजी से और श्रीविष्णु भगवान् लक्ष्मीजी से कहते हैं कि हे देवि ! अब मैं श्रीमद्भगवद्गीता के पञ्चम अध्याय का माहात्म्य कहता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये। एक समय पुरुकुत्स नाम के नगर में एक ब्राह्मण रहता था, उसका पिङ्गल नाम था। वह ब्राह्मणवंश में जन्म लेकर भी दुराचारी हो गया और स्नान, सन्ध्योपासन, पूजन आदि कर्मों से रहित भी हो गया। नित्य गायकों का साथ करता, मृदङ्ग, ढोल आदि बाजा बजाता, गान करता और नाच करता था। दैवयोग से उसकी स्त्री भी व्यभिचारिणी मिली थी, उसका अरुणा नाम था। एक दिन अर्धरात्रि के समय उस व्यभिचारिणी अरुणा ने अपने पति को व्यभिचार कर्म में बाधक होते देखकर जान से मार डाला। उसका पातकी पति पिङ्गल मरने के बाद यमलोक को गया। वहाँ बहुत काल पर्यन्त नरक-यातना भोगने के बाद उसे पक्षी शरीर मिला और वह वन में गिद्ध हुआ। उसकी व्यभिचारिणी स्त्री को भगन्दर रोग हो गया और वह भी मरने के बाद यमलोक को गई। यमलोक में नरक के दुःखों को भोगने के बाद उसे भी पक्षी-शरीर में सुग्गी का जन्म मिला और उसी



अध्याय पांच में गीता पाठी के सिर के जल के स्पर्श से होती वगिध की मुक्ति

वन में आकर रहने लगी जहाँ उसका पिङ्गल पति गिद्ध होकर रहता था। एक दिन जब गिद्ध ने उस सुग्गी को देखा तब उसे पूर्वजन्म का ख्याल हुआ और उस सुग्गी को मार डाला। संयोगवश वह मरकर एक मनुष्य के खोपड़ी पर गिरी और उसी समय उसका पति गिद्ध भी किसी बहेलिया के द्वारा मारा गया और उसकी हड्डियाँ उसी मनुष्य की खोपड़ी में गिरीं। जब यमदूत उन दोनों को यमलोक ले गये और यमराज ने उन दोनों को देखा तब यमराज ने उन दोनों से कहा कि यद्यपि तुम दोनों पूर्वजन्म में बड़े ही पातकी थे परन्तु इस समय तुम्हारी हड्डियाँ मनुष्य की खोपड़ी में जाकर गिरी हैं, इसलिये अब तुम दोनों के पाप नष्ट हो गये। तुम दोनों उत्तम लोक को जाओ। जिस मनुष्य की खोपड़ी में तुम्हारी हड्डियाँ गिरीं, वह एक ब्रह्मज्ञानी योगिराज की खोपड़ी है। वह श्रीमद्भगवद्गीता के पञ्चम अध्याय का पाठ करता था, जिसके प्रभाव से वह पवित्रात्मा ब्रह्मलोक को गया है। उस महात्मा योगिराज की खोपड़ी में गिरने से तुम भी पवित्र हो गये। अब तुम दोनों भी उत्तम लोकों में जाओ। इसके बाद वे दोनों पिङ्गल और अरुणा विमान पर सवार होकर वैंकुण्ठ लोक को चले गये।

श्रीमद्भगवद्गीता के पञ्चम अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

अभ्यासयोग नामक षष्ठ अध्याय का कथा-प्रसङ्ग

पञ्चम अध्याय में अर्जुन ने पूछा कि कर्मसंन्यास और कर्मयोग में उत्तम साधन कौन है। श्रीकृष्ण भगवान् ने उन दोनों साधनों को कल्याणप्रद बतलाया और फल में दोनों की समानता होने पर भी साधन में सुगमता होने के कारण कर्मसंन्यास की अपेक्षा कर्मयोग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। तदनन्तर दोनों साधनों का स्वरूप, उनकी विधि और उनके फल का भी वर्णन

किया तथा दोनों साधनों के लिये परम उपयोगी ध्यानयोग का भी संक्षेप में वर्णन किया। परन्तु संक्षिप्त वर्णन होने के कारण अर्जुन को ठीक ठीक परिचय न हो सका। इसलिये अब ध्यानयोग का विस्तृतरूप से वर्णन करने के लिये षष्ठ अध्याय का आरम्भ करते हैं और सबसे प्रथम भक्तियुक्त कर्मयोग में प्रवृत्त करने के कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं।

श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे अर्जुन ! जो कर्मफल की इच्छा का त्यागकर केवल कर्तव्य बुद्धि से शास्त्रविहित

अपने कर्म को करता है वही संन्यासी और योगी है। जो केवल अग्नि तथा क्रियाओं का त्याग करनेवाला है वह न संन्यासी है और न योगी है। लोग जिसे संन्यास कहते हैं उसको योग समझो, बिना कर्मफल और संकल्प के त्याग किये कोई भी योगी नहीं हो सकता, क्योंकि फल-संकल्प के त्याग से ही निश्चल चित्तवान् योगी होता है। कर्म को ज्ञानयोग में प्रवेश का कारण कहा है, क्योंकि कर्म के द्वारा चित्तशुद्धि, और चित्तशुद्धि के होने पर ज्ञानारूढ़

(ज्ञाननिष्ठ) होता है। बाद शान्ति के मिलने पर कल्याण का भागी होता है। जो कर्मों में आसक्ति का त्याग कर समस्त भोगविषयों का त्यागी है वह योगारूढ़ कहा गया है। विवेकयुक्त आत्मा से आत्मा का उद्धार करे, उसकी अधोगति न करे क्योंकि आत्मा ही अपना बन्धु और शत्रु है। जिसने अपनी आत्मा से आत्मा (कार्य कारण संघात रूप) को वश में कर लिया है वही आत्मा उसका बन्धु है, और जिसने आत्मा को नहीं जीता वही आत्मा उसका शत्रु है और शत्रुवत् बर्तता है। जिसने

मन को वश में कर लिया और रागद्वेष से रहित है वह शीत उष्ण सुख दुःख के रहने पर भी स्वात्मनिष्ठ रहता है। जो ज्ञान (औपदेशिक अर्थात् शास्त्र या गुरु का उपदेश) और विज्ञान (अनुभव) के होने से निराकांक्ष और निर्विकार तथा जितेन्द्रिय है और पाषाण सुवर्ण को समान देखता है अर्थात् पाषाण (पत्थर) का त्याग और सुवर्ण ग्रहण करने की जिसमें बुद्धि नहीं है वह योगारूढ़ योगी है। सुहृत् (निःस्वार्थ हितकर्ता), मित्र (स्नेहवश हितकर्ता), अरि (शत्रु), उदासीन (पक्षपात-

रहित), मध्यस्थ (उभयपक्ष का हितकर्ता), द्वेष (द्वेष का विषय), बन्धु, साधु, (सदाचारी) और पापी इनमें राग द्वेष से शून्य बुद्धि रखनेवाला पुरुष योगियों में भी श्रेष्ठ है। योगारूढ़ पुरुष एकाकी रहे, सदा एकान्त में वास करे, मन और शरीर को वश में रक्खे, निराकांक्ष अथवा निराहार रहे, किसी वस्तु का संग्रह न करे, मन को परमेश्वर के ध्यान में लगावे। पवित्र स्थान में प्रथम कुशासन बिछाकर मृगचर्म बिछावे और मृगचर्म के ऊपर वस्त्र बिछावे, परन्तु वह आसन न अधिक ऊँचा

हो, न अधिक नीचा हो। उस आसन पर बैठकर मन और इन्द्रियों की क्रिया को वश में करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योगाभ्यास करे। योगाभ्यास में शरीर, शिर और ग्रीवा अर्थात् मूलाधार से शिर पर्यन्त भाग को निश्चल करे, स्थिर रहे, अपनी नासिका के अग्रभाग को देखता रहे और किसी तरफ दृष्टि न करे। प्रशान्तचित्त, निर्भय, ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित रहकर सर्वत्र से मन को रोककर मुझमें लगावे और योग का साधन करे। इस प्रकार मन को वश में

करनेवाला योगी योग में निश्चित मन होकर अपनी आत्मा को सर्वदा योग में तत्पर रखता है वह मुझमें स्थित शान्ति (मोक्ष) को प्राप्त करता है। न बहुत भोजन करने से, न अत्यन्त भोजन त्याग करने से, न अधिक शयन करने से और न अधिक जागरण करने से योग सिद्ध होता है। जो नियमित आहार विहार और कर्म करता है तथा प्रमाण से सोता और जागता है उसका योग दुःखों को दूर करनेवाला होता है। जब मन आत्मा में ही निश्चल रूप से स्थित होता है और

समस्त ऐहिक तथा पारलौकिक कामनाओं से तृष्णा-रहित होता है तब वह युक्तयोगी कहलाता है और आत्मविषयक योगाभ्यास में रत योगी का चित्त निर्वात स्थान में स्थित दीपक के समान निश्चल हो जाता है, तथा चित्तवृत्तियों के अवरुद्ध होने पर जहाँ विश्राम लेता है और शुद्ध मन से आत्मा को ही देखता है तथा आत्मदर्शन में ही संतुष्ट रहता है, और उससे अधिक नहीं जानता, अतीन्द्रिय (विषयेन्द्रिय संबन्धातीत) सुख केवल आत्माकारता को प्राप्त बुद्धि

द्वारा ही जानता है और उस सुख में स्थित होकर आत्मस्वरूप से चलायमान नहीं होता तथा आत्म-सुखरूप सुख लाभ से अधिक और किसी लाभ को नहीं मानता और इस सुख में रहकर शीत उष्ण आदि दुःख से विचलित नही होता, तथा दुःख का लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं रहता उसको योग शब्द का वाच्य (अर्थ) जानिये और वह योग शास्त्राचार्यों के उपदेश से प्रयत्नशील होकर अभ्यास करने योग्य है। संकल्प से होनेवाली वासना सहित समस्त कामनाओं को

त्यागकर मन के द्वारा सर्वत्र से इन्द्रियसमूह को रोककर योगाभ्यास करे। धैर्ययुक्तबुद्धि से मन को आत्मा में धीरे धीरे निश्चल कर विश्राम ले और किसी वस्तु का चिन्तन न करे। मन चञ्चल और अस्थिर है, इससे यह रजोगुणवश जहाँ-जहाँ फिरे वहाँ-वहाँ से रोककर आत्मा में ही स्थिर करे। जिसका रजोगुण और मन शान्त हो गया है ऐसे निष्पाप और ब्रह्मत्व को प्राप्त योगी को उत्तम समाधिसुख स्वयं ही प्राप्त होता है, तथा पापों से रहित होकर अनायास ब्रह्म साक्षात्कार-रूप

सर्वश्रेष्ठ सुख को प्राप्त करता है अर्थात् जीवन्मुक्त हो जाता है। योगाभ्यास द्वारा एकाग्रचित होकर सबमें ब्रह्म को देखता है और अविद्याकृत देहादि परिच्छेद-शून्य अपनी आत्मा को ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सब प्राणी में स्थित देखता है तथा उनको अपनी आत्मा में अभेदभाव से देखता है। इस प्रकार देखनेवाले योगी से न तो मैं अदृश्य हूँ और न वह मुझसे अदृश्य है। वह ज्ञानी है और समस्त कर्मों को त्याग देने पर भी मुझसे ही मिला हुआ है अर्थात् वह मुझसे अलग

नहीं होता। जो अन्य प्राणियों में भी अपने समान सुख दुःख को देखता है और सबके सुख की ही इच्छा करता है वह योगी श्रेष्ठ है। अर्जुन बोले कि हे मधुसूदन! आपने मन का लयविक्षेपशून्य (केवल आत्माकार) अवस्थितिरूप योग का लक्षण बताया परन्तु मन के चञ्चल होने पर इस प्रकार का योग अधिक समय तक स्थिर नहीं कर सकता। मन स्वभाव से ही चञ्चल है, प्रमाथि (देह इन्द्रियों में क्षोभ पैदा करनेवाला) है, बल-वान् है, और दृढ़ (दुर्भेद्य) है। इसलिये मन को रोकना मैं

वायु के रोकने के समान सुदुष्कर (अत्यन्त कठिन) समझता हूँ। श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाबाहो! मन बड़ा चञ्चल है और इसका रोकना भी अत्यन्त कठिन है यह आपका कहना सत्य है तथापि हे कौन्तेय! अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा इसका निग्रह हो जाता है। बिना आत्मसंयम के इस प्रकार का योग दुष्प्राप्य है यह मेरा विचार है, परन्तु जो अभ्यास व वैराग्य द्वारा जितेन्द्रिय है वह इसी उपाय के द्वारा योग प्राप्त कर सकता है। अर्जुन बोले कि हे कृष्ण! जो प्रथम श्रद्धा

के साथ योग में प्रवृत्त हुआ परन्तु उचित उपाय न कर सका और अभ्यास में शिथिलता हो गई तब उस मनुष्य की क्या गति होगी ? हे महाबाहो ! योग और कर्म दोनों से भ्रष्ट तथा निराश्रय होकर और ब्रह्मप्राप्ति के उपाय को न जानकर एक मेघ से पृथक् होकर दूसरे में मिलने से पूर्व ही नष्ट हो जानेवाले मेघखण्ड के समान क्या वह नष्ट तो नहीं हो जाता ? हे कृष्ण ! आप मेरे इस संशय को दूर करने योग्य हैं, क्योंकि आपके सिवाय दूसरा कोई है ही नहीं। श्रीकृष्ण भगवान् बोले

कि हे पार्थ! उस मनुष्य का न तो इस लोक में नाश होता है और न परलोक में ही। क्योंकि शुभ काम का करनेवाला दुर्गति का भागी नहीं होता। जो योगभ्रष्ट है वह पुण्यात्माओं के लोक में बहुत वर्ष तक वास कर सदाचार-सम्पन्न श्रीमानों के गृह में जन्म लेता है। अथवा योगनिष्ठ धीमानों (ज्ञानियों) के ही कुल में जन्म लेता है। ऐसा जन्म मोक्ष का कारण होने से अत्यन्त दुर्लभ है। दोनों में से किसी भी देह में जाकर पूर्व देह को ब्रह्मविषय-बुद्धि के संयोग को प्राप्त कर मोक्ष

में अधिक प्रयत्न करता है। उसी पूर्वजन्म के अभ्यास के कारण पराधीन (विघ्न) होने पर भी योगनिष्ठ (ब्रह्मनिष्ठ) हो जाता है और केवल योगस्वरूप का जिज्ञासुमात्र होने से वेदोक्त कर्मफल से भी अधिक फल को प्राप्त करता है। इस प्रकार मन्द प्रयत्न करने-वाला योगी परम गति का भागी हो जाता है तब उत्तरोत्तर अधिक प्रयास करनेवाला योगाभ्यासी पाप-रहित होकर अनेक जन्मों के योगाभ्यास से सम्यक् ज्ञानी होकर श्रेष्ठ गति का भागी होता है इसमें क्या

कहना है। कृच्छ्र चान्द्रायण आदि तपोनिष्ठ, शास्त्रज्ञान से सम्पन्न तथा वापी कूप आदि बनवानेवाले कर्मनिष्ठों से भी योगी श्रेष्ठ है, इसलिये हे अर्जुन ! तुम योगी बनो। जो श्रद्धापूर्वक मुझमें चित्त लगाकर मेरा भजन करता वह योगियों में भी श्रेष्ठ है, यह मेरा मत है। इसलिये मेरे भक्त बनो।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद में अभ्यासयोग नामक षष्ठ अध्याय समाप्त हुआ।



षष्ठ अध्याय का माहात्म्य

श्री शंकर भगवान् पार्वतीजी से और श्रीविष्णु भगवान् लक्ष्मीजी से कहते हैं कि हे देवि ! अब मैं षष्ठ अध्याय के परम पुनीत माहात्म्य को कहूँगा, आप सावधान होकर सुनिये । प्रतिष्ठान नामक एक नगर था जो गोदावरी के तट पर बसा हुआ था । वह नगर बहुत रमणीक था । वहाँ का राजा ज्ञानश्रुति था । इस राजा की प्रशंसा पशु-पक्षी तक किया करते थे । इसका समय प्रजापालन, यज्ञ, व्रत, देवता-पूजन, जप, तप साधु-सेवा, अतिथि-सत्कार, तीर्थयात्रा, ब्राह्मण-भोजन और पवित्र धर्मकृत्यों के द्वारा व्यतीत होता था । एक समय इस राजा के नगर के ऊपर से हंसों का झुंड जा रहा था, उनमें से एक हंस ने दूसरे हंसों से कहा कि, 'देखिये, इस प्रतिष्ठान नगर का राजा धर्मात्मा और अपने पवित्र कर्मों से त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है ।' दूसरे हंसों ने कहा कि 'इससे भी अधिक प्रतापी और ब्रह्मज्ञानी महात्मा रैक्य हैं ।' राजा ज्ञानश्रुति ने हंसों के वार्तालाप को सुनकर महाराज रैक्य मुनि के दर्शन की



:अध्याय छः में रैयक मुनि का राजा जजश्रुति को उपदेश

इच्छा की परन्तु उनका पता न मालूम होने के कारण राजा काशी, प्रयाग प्रभृति सभी नगरों में भ्रमण करता हुआ काश्मीर देश में माणिक्येश्वर नामक महादेवजी के स्थान पर पहुँचा। वहाँ पर महर्षि रैक्य का दर्शन कर राजा ज्ञानश्रुति को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा ने रैक्य मुनि को प्रणाम किया और पूछा कि महाराज ! आपको यह अमोघ प्रताप किसके द्वारा प्राप्त हुआ ? महर्षि रैक्य ने कहा कि हे राजन् ! मैं प्रतिदिन श्रीमद्भगवद्गीता के षष्ठ अध्याय का पाठ करता हूँ, उसी के प्रभाव का यह फल है। रैक्य मुनि से श्रीमद्भगवद्गीता के षष्ठ अध्याय का माहात्म्य सुनकर राजा ज्ञानश्रुति ने भी षष्ठ अध्याय का पाठ आरम्भ कर दिया और उसके द्वारा सभी सुख भोगकर विष्णुलोक को गया।

श्रीमद्भगवद्गीता के षष्ठ अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता—भाषा

ज्ञान-विज्ञान योग नामक सप्तम अध्याय का कथा-प्रसंग

षष्ठ अध्याय में श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि जो अन्तरात्मा को मुझमें लगाकर श्रद्धा और प्रेम से मेरा भजन करता है, वह सब प्रकार के योगियों से श्रेष्ठ योगी है। परन्तु जब तक परमात्मा के स्वरूप, गुण और प्रभाव को नहीं जान पाता तब तक उसके द्वारा अन्तरात्मा से निरन्तर भजन होना बहुत कठिन है और भजन का प्रकार जानना भी बहुत आवश्यक है। इसलिये अब

श्रीकृष्ण भगवान् भक्तियोग का वर्णन करने के लिये सप्तम अध्याय का आरम्भ करते हैं, आरम्भ में ज्ञान-विज्ञान के कहने की प्रतिज्ञा करते हैं।

श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे पार्थ! जिस प्रकार अपना मन मुझ परमेश्वर में लगाकर और मेरा ही आश्रय लेकर योगाभ्यास करते हुए संशयरहित हो मुझको सम्पूर्ण विभूति बल ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त जानोगे, उस उपाय को तुम सुनो। मैं अब तुमसे शास्त्रीय ज्ञान और विज्ञान को कहूँगा। इसे जानकर इस कल्याण

मार्ग में स्थित तुम्हारे लिये फिर कुछ जानने योग्य वस्तु न रहेगी। इस मार्ग में मनुष्य को छोड़ अन्य जीवों की प्रवृत्ति नहीं होती, और सहस्रों मनुष्यों में कोई प्रबल पुण्य के वश आत्मज्ञान के लिये उपाय करता है तथा उन सहस्रों उपाय करनेवालों में कोई प्रबलतर पुण्य के वश आत्मा को जानता है और सहस्रों आत्मज्ञानियों में कोई प्रबलतम पुण्य के वश मुझ परमात्मा को मेरे प्रसाद से ठीक ठीक जानता है। हे अर्जुन ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश, मन, बुद्धि, और अहंकार ये आठ प्रकार से

विभक्त मेरी प्रकृति है, तथा यह अपरा (निकृष्ट) प्रकृति है और इससे भिन्न जीवस्वरूपा परा प्रकृति है जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है। ये सम्पूर्ण प्राणी इन्हीं दोनों प्रकृतियों से उत्पन्न हैं, और मैं समस्त जगत् का उत्पत्तिकर्ता तथा प्रलयकर्ता हूँ। मुझसे श्रेष्ठ कोई नहीं है, यह समस्त जगत् सूत्र में मणियों के समान मुझ में गुथा हुआ है। मैं जल में रस हूँ, सूर्य और चन्द्रमा में प्रभा (प्रकाश) हूँ, सम्पूर्ण वेदों में प्रणव (ओंकार) हूँ, आकाश में शब्द हूँ, मनुष्यों में उद्यम हूँ। पृथ्वी में पवित्र

गन्ध, अग्नि में तेज, समस्त प्राणियों में जीवन (प्राण धारण वायु), तपस्वियों में तप, चराचर समस्त प्राणियों का सनातन कारण, बुद्धिमानों में बुद्धि, तेजस्वियों में तेज बलवानों में काम (राजस) और राग (तामस) से भिन्न सात्त्विक (स्वधर्मानुष्ठान सामर्थ्य) बल हूँ और समस्त प्राणियों में स्वधर्मानुकूल अपनी स्त्री में पुत्रोत्पत्ति मात्र के लायक काम हूँ। जो सात्त्विक (शम दम आदि) राजस (द्वेष दर्प आदि), तामस (शोक मोह आदि) भाव हैं जो कि प्राणियों को स्वकर्म के वश होते हैं, उनको

मुझसे उत्पन्न जानो, परन्तु मैं उनमें नहीं हूँ और वे तो मेरे अधीन होकर मुझमें हैं। यह समस्त जगत् सात्त्विक, राजस, तामस, भावों से मोहित है अतः इनसे परे मुझ, अविनाशी (निर्विकार) को ठीक से नहीं जानता क्योंकि यह दैवी गुणमयी मुझ परमेश्वर की माया दुस्तरा है। जो लोग भक्ति से मेरा भजन करते हैं वे इस दुस्तर माया को पार कर जाते हैं। ऐसे सुन्दर मार्ग का शास्त्र-आचार्य के द्वारा उपदेश होने पर भी मेरी माया से ज्ञान के अपहृत हो जाने पर आसुर (दम्भ दर्प अभिमान क्रोध

पारुष्य) स्वभाव को प्राप्त होकर नराधम पापशील मूढ़ (विवेकशून्य) लोग मेरा भजन नहीं करते हैं। मेरा भजन पूर्वजन्म के पुण्यात्मा करते हैं। वे चार प्रकार के होते हैं—एक आर्त्त (रोगादि से पीड़ित), दूसरा जिज्ञासु (आत्मज्ञानेच्छु), तीसरा अर्थार्थी (इस लोक या परलोक के पदार्थों का लिप्सु) और चौथा ज्ञानी (आत्मवेत्ता)। उनमें नित्ययुक्त (सदा मन्निष्ठ) एक भक्ति (मेरा ही एक भक्त) ज्ञानी श्रेष्ठ है, क्योंकि देहाद्य-भिमानशून्य ज्ञानी को मैं प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मेरा

प्रिय है। यद्यपि ये चारों भक्त श्रेष्ठ हैं, परन्तु ज्ञानी मेरी आत्मा (स्वरूप) है, क्योंकि युक्तात्मा (मदेकचित्त) होकर वह ज्ञानी सर्वोत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी तरह स्थित है और मुझसे भिन्न दूसरा कुछ भी फल नहीं मानता है। ऐसा भक्त बहुत जन्मों के पुण्यसंचय के बाद अन्तिम जन्म में ज्ञानवान् होकर इस चराचर जगत् को वासुदेव बुद्धि (सर्वात्मदृष्टि) से देखता हुआ मेरा भजन करता है परन्तु वह अति दुर्लभ है, जो लोग पुत्र, कीर्ति, शत्रु-विजय आदि विषयों की

अभिलाषा से विवेकशून्य हो गये हैं वे भूत, प्रेत, यक्ष आदि देवता का भजन करते हैं और पूर्वजन्म की वासना के अनुसार उन देवताओं की आराधना के नियमों का पालन करते हैं। उनमें जो जो भक्त जिस जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस उस भक्त की श्रद्धा को उस उस देवता के अनुकूल मैं अचल (दृढ़) करता हूँ। तथा वह भक्त उस दृढ़ श्रद्धा से युक्त होकर उस देवता का पूजन करता है, और उस देवता विशेष से उन इच्छित भोगों को प्राप्त करता

है किन्तु वे काम मेरे ही द्वारा निर्मित हैं क्योंकि वे देवता भी मेरी ही मूर्ति होते हैं। बुद्धिहीन पुरुष मुझ प्रपञ्च-रहित को मनुष्य मत्स्य कूर्म आदि स्वरूप को प्राप्त मानते हैं क्योंकि वे मेरे उस अव्यय (नित्य), अत्युत्तम (सर्वश्रेष्ठ) अर्थात् जगद्रक्षार्थ लीलामात्रशरीरधारी परमेश्वर के स्वरूप को न जानकर स्वकर्म-निर्मित भौतिक देहधारी देवताविशेष के समान जानते हैं अतः मेरा त्याग कर देवविशेष से नाशवान् फल को पाते हैं। मैं अपनी योगमाया (युक्ति विशेष) से छिपा रहता हूँ।

और सभी लोगों के समक्ष प्रकट नहीं होता हूँ, इसलिये यह अज्ञानी मनुष्य मुझ परमात्मा को जन्मरहित अविनाशी नहीं जानता है। मैं भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों कालों के समस्त प्राणियों को जानता हूँ, किन्तु मेरी माया से मोहित होने के कारण मुझको कोई नहीं जानता है। इस संसार में स्थूल देह धारण करने पर तदनुकूल में इच्छा और उसके प्रतिकूल में द्वेष होने से उत्पन्न जो शीत उष्ण, सुख दुःख आदि द्वन्द्वरूप मोह (विवेक नाश) है उससे समस्त प्राणी संमोह (अज्ञानता) को प्राप्त होते हैं। परन्तु

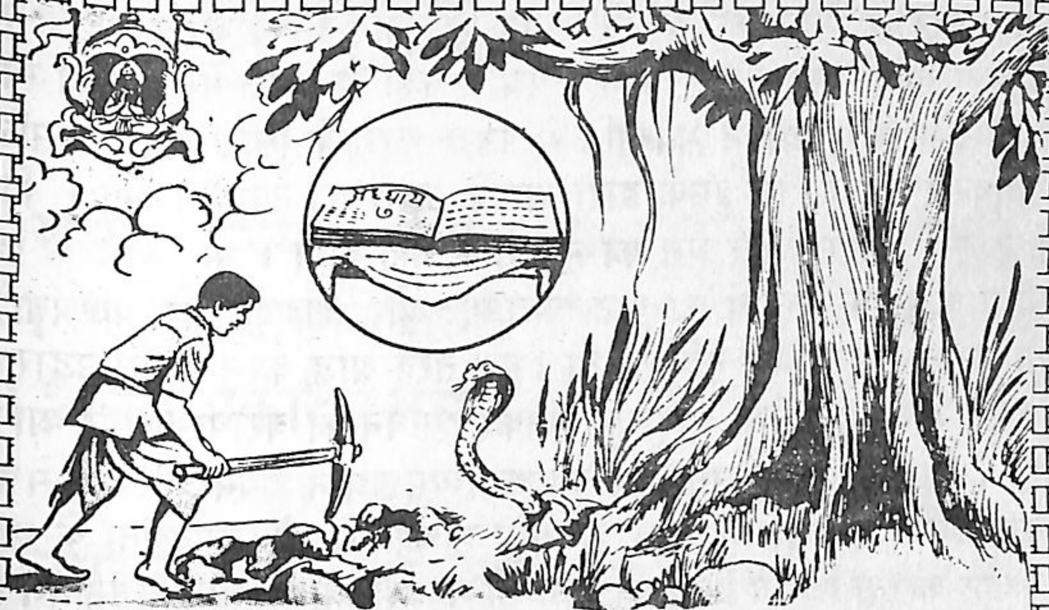
पुण्यात्मा लोग पापरहित, रागद्वेषादि द्वन्द्वरूप मोह से मुक्त हैं तथा दृढ़व्रत हैं अतः वे मुझको भजते हैं। जो मेरा आश्रय लेकर जरा और मरण से मुक्त होने के लिये यत्न करते हैं, वे उस ब्रह्म को तथा सम्पूर्ण अध्यात्म को और समस्त कर्म को जानते हैं। जो लोग मुझे अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ सहित जानते हैं वे युक्त चित्त-वाले पुरुष अन्तकाल में भी मुझको ही जानते हैं अर्थात् मुझको प्राप्त होते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद में ज्ञानविज्ञानयोग नामक सप्तम अध्याय समाप्त हुआ।



सप्तम अध्याय-माहात्म्य

श्री शंकर भगवान् पार्वतीजी से और श्री विष्णु भगवान् लक्ष्मीजी से बोले कि हे देवि ! अब मैं सप्तम अध्याय का माहात्म्य कहताहूँ, सावधान होकर सुनिये । एक समय पाटलिपुत्र (पटना) नामक नगर में शंकुकर्ण नामक ब्राह्मण रहता था और वह वैश्यवृत्ति से जीवननिर्वाह करता था । उसके तीन पुत्र थे । एक दिन वह व्यापार के सिलसिले में देशान्तर को गया था । वहाँ सर्प के काटने से उसकी मृत्यु हो गई । शंकुकर्ण ने जो कुछ धन संचय किया था उसे जमीन के अन्दर ही गाड़ दिया था । मरने पर उसी स्थान पर सर्प होकर गड़े धन की रक्षा करता था । एक दिन सर्प-शरीर से ऊबकर अपने पुत्र को स्वप्न दिया कि तुम लोग मेरा उद्धार करो । मैं सर्पयोनि में हूँ और अमुक स्थान में रहता हूँ तथा मेरे पास वहुत धन भी है । मैंने जीवित अवस्था में ही उस धन को जमीन के अन्दर गाड़ दिया था । दोनों पुत्र पिता के दुःख से दुःखी होकर उद्धार का उपाय सोचने लगे परन्तु मँझला पुत्र धन के लालच से अपनी स्त्री के साथ जहाँ धन गड़ा था वहाँ गया और उस जमीन को खोदने लगा ।



सातवें अध्याय के पाठ के प्रभाव से सर्प रूपी शंकुकर्ण की मुक्ति

जब बिल के अन्दर से निकलकर सर्प ने मध्यम पुत्र और उसकी स्त्री को देखा तब उसने इनके बिल खोदने का कारण पूछा। पुत्र ने कहा कि आज मैंने आपको स्वप्न में सर्पयोनि में देखा और आपने सर्पयोनि से उद्धार करने के लिये कहा। इसलिये मैं धन को निकाल रहा हूँ कि इसके द्वारा आपके उद्धार का उपाय करूँगा। पिता ने कहा कि हे पुत्र ! मेरा उद्धार धन को लुटाने से नहीं होगा। मेरे श्राद्ध के दिन श्रीमद्भगवद्गीता के सप्तम अध्याय का पाठ कराओ और ब्राह्मणों को पवित्रता के साथ भोजन कराकर सुवर्ण की दक्षिणा दो। इस तरह श्राद्ध करने से मेरा उद्धार हो जायगा। इसके बाद तुम तीनों भाई यहाँ आकर इस धन को बराबर-बराबर आपस में बाँट लेना। पिता के कथनानुसार घर आकर मध्यम पुत्र ने अपने बड़े भाई से यह समाचार कहा और ज्येष्ठ पुत्र ने श्राद्ध के समय ब्राह्मणों से श्रीमद्भगवद्गीता के सप्तम अध्याय का पाठ कराया जिसमें पिता की मुक्ति हो गई और बाद में तीनों ने उस धन को आपसमें बाँट लिया तथा सभी पुत्र सप्तम अध्यायके पाठके प्रभावसे विष्णुलोकको चले गये।

श्रीमद्भगवद्गीता के सप्तम अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता—भाषा

महापुरुषयोग नामक अष्टम अध्याय का कथा-प्रसंग

सप्तम अध्याय में श्रीकृष्ण भगवान ने अपने सम्पूर्ण रूप के तत्व जाननेवालों की प्रशंसा की और उस तत्व को अनेक प्रकार से समझाकर न समझ में आने के कारण को भी अच्छी तरह समझाया तथा अन्त में ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ के सहित भगवान् के समग्र रूप को जाननेवाले भक्त की महिमा का वर्णन किया। परन्तु ब्रह्म अध्यात्म आदि

विषयों का ठीक ठीक ज्ञान न होने से अष्टम अध्याय में उन्हीं विषयों को अर्जुन पूछते हैं।

अर्जुन बोले कि हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ किसे कहते हैं, तथा इस शरीर में युक्त चित्तवाले पुरुषों द्वारा अन्त समय में आप किस उपाय से जाने जाते हैं ? श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे अर्जुन ! परम (श्रेष्ठ), अक्षर (नाशरहित) अर्थात् जो जगत् का मूल कारण है उसे ब्रह्म कहते हैं और स्वभाव अध्यात्म है अर्थात् उस ब्रह्म के अंश से

जीवरूप से प्रकट होकर देह के साथ संबन्ध कर भोक्तृत्व रूप से स्थित होने के कारण अध्यात्म कहा जाता है, तथा प्राणियों के भाव को उत्पन्न करनेवाला जो देवतोद्देश से द्रव्य-त्यागरूप यज्ञ है वह कर्म शब्द से कहा जाता है, और क्षर भाव अर्थात् विनश्वर देहादि पदार्थ अधिभूत हैं, तथा हिरण्यमय पुरुष अधिदैव है और इस देह में मैं ही अधियज्ञ हूँ। जो पुरुष अन्त समय में मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग देता है वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है,

और अन्त समय में जिस जिस भाव को स्मरण करता हुआ प्राणी शरीर को छोड़ता है सदा उस भाव से वासित-चित्त होकर उस उसको ही प्राप्त होता है। इसलिये तुम सब समय में मेरा स्मरण करो और युद्ध करो, मुझमें मन और बुद्धि को लगाकर निःसन्देह मुझको प्राप्त होगे। जो मनुष्य अपने चित्त को दूसरे तरफ भटकने न देकर अभ्यास से उसे एकाग्र कर परम प्रकाशमय परमेश्वर का चिन्तन करता है, वह उसमें मिल जाता है। जो पुरुष कवि (सर्वज्ञ), पुराण (अनादिसिद्ध)

सबका नियन्ता, सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म, सबका भरण-पोषण करनेवाला, अचिन्त्यस्वरूप, सूर्य के समान प्रकाशरूप और तम (प्रकृति) अर्थात् अविद्या से परे पर-मात्मा का स्मरण करता है, वह भक्तियुक्त होकर अन्त समय में योगबल से भ्रुकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी तरह स्थिर कर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य सर्वश्रेष्ठ परमात्मा को ही प्राप्त होता है। वेद को जाननेवाले जिसे अक्षर कहते हैं, वीतराग (आसक्ति रहित) प्रयत्नशील संयमी पुरुष जिसमें प्रवेश करते हैं

और जिसको जानने की इच्छा से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं उस परमपद को संक्षेप से तुम्हारे लिये कहूँगा। जो मनुष्य सम्पूर्ण द्वार को बन्द कर मन को हृदय में रोककर ललाट के भीतर अर्थात् भौंहों के बीच अपने प्राणवायु को निश्चल कर योगाभ्यास में स्थिर रहता है और "ॐ" इस एकाक्षर रूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और मेरा स्मरण करता हुआ इस शरीर को त्यागकर जाता है वह पुरुष परमगति को प्राप्त होता है। जो मुझमें अनन्य भाव से चित्त लगाकर निरन्तर मेरा स्मरण

करता है उस युक्त योगी के लिये मैं सुलभ हूँ। ऐसे महात्मा तथा भक्त लोग मुझको प्राप्त कर फिर क्षणभंगुर पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन! ब्रह्मलोक तक जितने लोक हैं उन सबों की उत्पत्ति होती है और नाश भी होता है, परन्तु जो मुझको प्राप्त हुआ है वह फिर जन्म का भागी नहीं होता है। ब्रह्मा का जो एक दिन है वह एक हजार युग का होता है और उतने ही एक हजार युग की रात्रि होती है, ऐसा योगी लोग जानते हैं। ब्रह्मा के दिन के प्रवेशकाल में समस्त

चराचर जगत् के प्राणी अव्यक्त (ब्रह्मा) के सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा के रात्रि के प्रवेशकाल में उसी सूक्ष्म शरीर में लीन हो जाते हैं। वही यह चराचर भूतसमुदाय कर्म के वश बार बार दिन में उत्पन्न होकर रात्रि के प्रवेशकाल के आने पर लय को प्राप्त हो जाता है। हे अर्जुन! उन चराचर प्राणियों का कारण जो अव्यक्त है उससे भी परे विलक्षण जो अव्यक्त (चक्षुरादि इन्द्रियातीत), सनातन (अनादि) है वह परमात्मा समस्त कार्यकारणरूप प्राणियों के नष्ट होने पर भी

नष्ट नहीं होता है। जो अव्यक्त (अतीन्द्रिय) और अक्षर (अविनाशी) कहा गया है उस अक्षर नामक अव्यक्त को परम गति कहते हैं, जिसको प्राप्त होकर फिर संसार में लौटकर नहीं आते वही मेरा धाम है। जिस परमात्मा के भीतर चराचर समस्त प्राणी रहते हैं और जिस परमात्मा ने इस चराचर जगत् को व्याप्त कर रक्खा है वह सनातन अव्यक्त पर पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है। हे अर्जुन! जिस काल में शरीर त्यागकर गये हुए योगी फिर लौटकर नहीं आते और

जिस काल में लौटकर आ जाते हैं अब मैं उस काल को कहूँगा। दो प्रकार के मार्गों में से जिस मार्ग में अग्नि ज्योति अर्थात् आँच अभिमानिनी देवता है और अहः अर्थात् दिवसाभिमानिनी देवता है, तथा शुक्ल अर्थात् शुक्लपक्षाभिमानिनी देवता है और उत्तरायण के छः महीनों की अभिमानिनी देवता हैं, इसके अतिरिक्त वेदोक्त संवत्सर के देवलोकादि देवता हैं उस मार्ग में शरीर त्यागकर जानेवाले ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म को प्राप्त होते हैं और फिर लौटकर नहीं आते हैं, और जिस मार्ग में धर्म

अर्थात् धर्माभिमानिनी देवता है, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन के छः महीनों के देवता हैं उस मार्ग में शरीर त्याग कर जानेवाले सकाम कर्मयोगी चान्द्रमस अर्थात् स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं और फिर लौटकर संसार में आते हैं। हे अर्जुन! ज्ञानाधिकारी और सकाम कर्माधिकारी जनों के लिये ये शुक्ल (उत्तरायण) और कृष्ण (दक्षिणायन) दो प्रकार की शाश्वत (अनादि) गति कही गई है, क्योंकि संसार भी अनादि है। इनमें एक शुक्ल मार्ग से निवृत्ति (मोक्ष) को प्राप्त करता है

और जो दूसरे कृष्ण मार्ग से जाते हैं वे फिर संसार में लौटकर आते हैं। इन मोक्ष और संसार को देनेवाले दो मार्गों को जाननेवाला कोई भी योगी मोहित नहीं होता है, इसलिये हे अर्जुन ! सब समय में योगयुक्त अर्थात् समत्वबुद्धिरूप योग से युक्त हो जाओ। वेदों में अध्ययनादि, यज्ञों में अनुष्ठानादि, तप में काय-शोषणादि और दान में सत्पात्र के लिये अर्पणादि से जो पुण्यफल शास्त्रों में कहा है, इस अष्ट प्रश्नार्थ निर्णयोक्त तत्त्व को जानकर और योगी होकर उससे भी

अधिक श्रेष्ठ जगत् का मूलभूत जो विष्णुपद है उसको प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद में महापुरुषयोग नामक अष्टम अध्याय हुआ।

——❀❀❀ ———

श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

अष्टम अध्याय का माहात्म्य

श्री शंकर भगवान् पार्वतीजी से और श्री विष्णु भगवान् लक्ष्मीजी से बोले कि हे देवि ! अब आप सावधान होकर अष्टम अध्याय का भी माहात्म्य सुनिये, जिसके श्रवण से महान् पापों का नाश हो जाता है। दक्षिण देश में आमर्दकपुर नामक नगर है। वहाँ भावशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। वह सभी ब्राह्मणोचित कर्मों से



पाठ सनने से प्रेत और पिशाचिनी की मुक्ति

गिर गया था। एक दिन उसने ताड़ी पी ली और उसके नशे में गिरकर मर गया। मरने पर उसी स्थान में ताड़ का वृक्ष हुआ और उस वृक्ष पर एक ब्रह्मराक्षस अपनी स्त्री के साथ आकर रहने लगा। एक दिन ब्रह्मराक्षस की स्त्री ने पति से अपने उद्धार का उपाय पूछा। ब्रह्मराक्षस ने कहा कि श्रीमद्भगवद्गीता के अष्टम अध्याय के पाठ से उद्धार हो सकता है। मैंने मदिरा के नशे से चूर होने के कारण इस पर कभी ध्यान नहीं दिया। परन्तु एक दिन अष्टम अध्याय का आधा श्लोक सुना था वह मुझे याद है। यह कहकर उस आधे श्लोक को पढ़ने लगा जिसके श्रवण से वह वृक्ष सूखकर गिर गया तथा दूसरे जन्म में ब्राह्मण हुआ और अष्टम अध्याय का पाठ कर विष्णुलोक को गया। वह ब्रह्मराक्षस तथा उसकी स्त्री दोनों राक्षस-योनि से छूटकर विष्णुलोक को चले गये।

श्रीमद्भगवद्गीता के अष्टम अध्याय का महात्म्य समाप्त हुआ।



श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

राजविद्या राजगुह्य योग नामक नवम अध्याय का कथा-प्रसंग

सप्तम और अष्टम अध्याय में श्रीकृष्ण ने अपने पारमेश्वर तत्त्व को भक्ति के द्वारा सुलभ बतलाया। अब उस अचिन्त्य अपने ऐश्वर्य और भक्ति के असाधारण प्रभाव को कहने के लिये नवम अध्याय का आरम्भ करते हैं जिसके आरम्भ में विज्ञान सहित ज्ञान का वर्णन करने की प्रतिज्ञा करते हैं।

श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे अर्जुन! तुम दोषदृष्टि-

रहित भक्त के लिये इस विज्ञान (उपासना) के सहित ज्ञान को कहूँगा। जिसके ज्ञान से तुम मुक्त हो जाओगे। यह ज्ञान विद्याओं का राजा, गोपनीयों का राजा, अति पवित्र, उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, सब धर्मों के फल का दाता होने से धर्मयुक्त, सुख से करने लायक और अविनाशी है। प्राणी इस धर्म का त्यागकर उपायान्तर से मुझे नहीं पाता, किन्तु मृत्युरूप संसार-चक्र में भ्रमता रहता है। यद्यपि यह समस्त जगत् मुझसे व्याप्त है और सब मुझमें स्थित हैं फिर भी मैं आकाश के समान सर्वव्यापक

होकर भी सबसे पृथक् हूँ। मैं सबका धारण भरण पोषण करनेवाला होकर भी सबसे पृथक् हूँ। जैसे जीव देह को धारण पालन करता और अहंकारयुक्त होकर उस देह में स्थिर रहता है, वैसे मैं उन भूतों में स्थित नहीं हूँ क्योंकि मैं अहंकाररहित हूँ। जैसे आकाश से उत्पन्न वायु आकाश में सदा स्थित है वैसे समस्त प्राणी मुझमें स्थित हैं। प्रलय-काल में समस्त भूतों का मेरी प्रकृति में लय हो जाता है और कल्प के आदि में उनको फिर से कर्मों के अनुसार मैं रचता हूँ। वे सृष्टि आदि कर्म मुझे नहीं बाँधते क्योंकि मैं

उन कर्मों में आसक्तिरहित हूँ और उदासीन के सदृश स्थित हूँ। मुझ अधिष्ठाता के द्वारा यह मेरी प्रकृति (माया) और समस्त जगत् रचा जाता है तथा आवा-गमन रूप चक्र में घूमता है। मैं भक्त के वश होकर शरीर धारण करता हूँ परन्तु मूढ़ लोग मुझे मनुष्य-शरीर धारण करने पर तुच्छ समझते हैं। वृथा आशा, वृथा कर्म, वृथा ज्ञानवाले अज्ञानी लोग राक्षसी (तामसी) और आसुरी (मोहिनी) प्रकृति के वश मेरा अपमान करते हैं। जो दैवी प्रकृति के आश्रित रहनेवाले महात्मा हैं वे लोग मुझ

अविनाशी को जानकर अनन्य मन से निरन्तर भजते हैं और सदा स्तोत्र, मन्त्र आदि से कीर्तन, पूजन, नमस्कार ध्यान के द्वारा मेरी सेवा करते हैं। कुछ लोग ज्ञानयज्ञ से, कुछ लोग 'एकमेव परंब्रह्म' इस परमार्थ दर्शनरूप अभेद-भावना से, कुछ लोग पृथक् (दास) भावना से, कुछ लोग विश्वतोमुख अर्थात् सर्वात्मक मेरी ब्रह्मा रुद्र आदि रूप से सेवा करते हैं। अग्निष्टोमादि श्रौत यज्ञ, पञ्चयज्ञादि स्मार्त यज्ञ, श्राद्धादि में पितरों के लिये स्वधा, औषध (अन्न या दवा) [illegible] मन

होमादि साधन आज्य आदि, आहवनीयादि अग्नि और हवनरूप क्रिया भी मैं हूँ। मैं इस जगत् का धाता (कर्म-फलविधाता), पिता, माता, पितामह हूँ, और मैं वेद्य वस्तु, प्रायश्चित्तादि पवित्र, अहङ्कार, ऋग्वेद, साम-वेद, यजुर्वेद हूँ। मैं गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सुहृत्, प्रभव, प्रलय, स्थान, निधान, बीज हूँ तथापि मैं अविनाशी हूँ, व्रीह्यादि बीजवत् नश्वर नहीं हूँ। मैं ग्रीष्म ऋतु में सूर्य रूप से सब जगत् को तपाता हूँ, वृष्टि के समय मैं जल बरसाता हूँ, कभी अवर्षण

करता हूँ, कभी बरसाता हूँ और मैं अमृत (जीवन) मृत्यु (नाश), सत् (स्थूल दृश्य), असत् (सूक्ष्म अदृश्य) हूँ। जो तीनों वेदों के द्वारा इन्द्रादि रूप से मेरा ही पूजन करके यज्ञशेष सोमरस को पीनेवाले और शोधित पापवाले होकर स्वर्ग को चाहते हैं वे लोग पुण्य के फलस्वरूप इन्द्रलोक में जाकर स्वर्गसुख को भोगते हैं और पुण्य क्षीण होने पर मनुष्यलोक में आकर पुनः वेदत्रय में कहे गये धर्मों का अनुसरण कर आवागमन को प्राप्त होते हैं। जो भक्तजन अनन्य भाव से

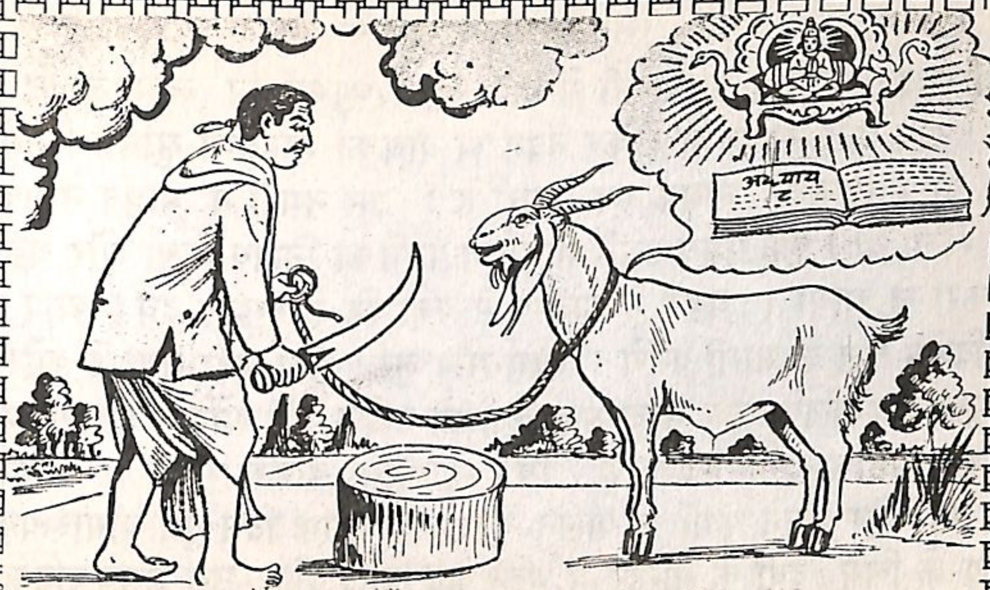
चिन्तन कर मेरा भजन-सेवन करते हैं उनका योग (धनादि लाभ), क्षेम (लब्ध का पालन) और उनसे अप्रार्थित वा मोक्ष का मैं ही वहन करता हूँ। जो दूसरे देवता का पूजन करते हैं वे आवागमन को प्राप्त होते हैं। मैं सब यज्ञों का तत्तद्देवतारूप से भोक्ता और प्रभु हूँ परन्तु लोग मुझको नहीं जानते हैं, इसी से आवागमन में गिर जाते हैं। देवताओं के पूजनेवाले देवगति, पितरों के पूजनेवाले पितृगति, भूतों के पूजनेवाले भूतगति को पाते हैं और मेरी पूजा करनेवाले मुझ परमानन्दरूप

नारायण को प्राप्त होते हैं। जो भक्त पत्र, पुष्प, फल और जल को मेरे लिये प्रेम से अर्पण करता है उस शुद्ध चित्त निष्काम भक्त का भक्ति से दिया हुआ पत्र-पुष्पादि मैं प्रेम से ग्रहण करता हूँ। स्वभाव या शास्त्र से तू जो कुछ करता है, खाता है, होम करता है, देता है और तप करता है वह सब मुझे अर्पण कर। ऐसा करने से तुम कर्मबन्धन से मुक्त हो जाओगे और संन्यासयोग में युक्त होकर मुझको पाओगे। मैं समस्त प्राणियों में समान रूप से व्यापक हूँ अतः न कोई मेरा शत्रु है,

न कोई मेरा प्रिय है, तथापि जो भक्त मेरा भजन करते हैं वे मुझमें और मैं उनमें वास करता हूँ। यदि कोई दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भजन करता है तो वह साधु मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चय-वाला है। वह अनन्य भक्त शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है, उसे शान्ति मिलती है। हे अर्जुन ! यह निश्चित है कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता है। स्त्री, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज आदि सभी मेरा सेवन कर परमगति के भागी होते हैं। यदि पवित्र ब्राह्मण और भक्त राजर्षिजन मेरा

भजन कर परमगति के भागी होते हैं तो इसमें फिर क्या कहना है। हे अर्जुन ! अनित्य, सुखरहित इस मनुष्यलोक को पाकर मेरा भजन करो, मन को मुझमें लगाओ, मेरा भक्त बनो, मेरा पूजन करो, मुझको नमस्कार करो और मुझमें तत्पर रहो। इन उपायों से मन को मुझमें लगाकर परमानन्दरूप मुझको पाओगे।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद में राजविद्या राजगुह्य योग नामक नवम अध्याय समाप्त हुआ।



ब्राह्मण को बकरा द्वारासद उपदेश

नवम अध्याय का माहात्म्य

श्री शङ्कर भगवान् पार्वतीजी से और श्री विष्णुभगवान् लक्ष्मीजी से बोले कि हे देवि ! अब आप सावधान होकर नवम अध्याय का माहात्म्य सुनिये। नर्मदा नदी के तट पर माहिष्मती नामक एक नगरी है। उस नगरी में माधव नामक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। एक समय उसने सोमयाग करने का निश्चय किया और यज्ञ के लिये एक बकरा ले आया। बकरे ने ब्राह्मण से कहा कि हे ब्राह्मण देव ! आप मेरा वध करके विशेष फल के भागी बनेंगे। स्वर्ग-सुख तुच्छ सुख कहा गया है और सर्वश्रेष्ठ मोक्ष-सुख है इसलिये आप मोक्ष-सुख के लिये उद्योग करें और मैं आपसे अपने पूर्व-जन्म का समाचार भी कहता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये। मैं पूर्वजन्म में ब्राह्मण था और अपने कर्मों का पालन करता था। एक दिन पुत्र बीमार पड़ा, उसके कल्याण के लिये देवी के मन्दिर में बकरे की बलि दी। उस समय लड़का अच्छा हो गया परन्तु उस बकरे की हत्या से अनेकों योनियों में भ्रमण करने के बाद अब बकरे की योनि मिली है। जिस कर्म से मैं अभी तक दुःख भोग रहा हूँ उसी कर्म

को करने के लिये आप भी तैयार हैं। स्वल्प सुख के लिये किसी का वध करना अन्त में दुःख भोगना बुद्धिमानी का काम नहीं है। मैं इसके पूर्वजन्म में बन्दर की योनि में था। उस समय नर्मदा नदी के तट पर एक राजा ग्रहण के समय एक ब्राह्मण को दान दे रहा था। मैं भी पास के वृक्ष पर बैठा था। इतने में उस दान लेनेवाले ब्राह्मण से अन्य ब्राह्मणों ने कहा कि तीर्थ में ग्रहण के समय दान लेना महापाप कहा गया है। ब्राह्मण ने कहा कि मैं श्रीमद्भगवद्गीता के नवम अध्याय का नित्य पाठ करता हूँ इसके पाठ से समस्त पापों का नाश हो जाता है और अन्त में मुक्ति मिलती है। मुझे इस दान लेने का भय नहीं है। मैं शरीर के निर्वाह के लिये दान लेता हूँ। इसलिये हे ब्राह्मण देवता! आप मोक्ष-सुख के लिये श्रीमद्भगवद्गीता के नवम अध्याय का पाठ करें और कृपा कर पाठ के द्वारा मेरा भी उद्धार करें। बकरे की बात सुनकर ब्राह्मण ने नवम अध्याय का पाठ उसे सुनाया। वह बकरा श्रवण कर बकरे की देह से मुक्त हो गया। इसके बाद ब्राह्मण को इसके पाठ से दृढ़ विश्वास हो गया और वह नित्य इसका पाठ करने लगा और अन्त में वैकुण्ठलोक को गया।

श्रीमद्भगवद्गीता के नवम अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

विभूतियोग नामक दशम अध्याय का कथा प्रसंग

सप्तम से लेकर नवम अध्याय तक भजनीय परमेश्वररूप का निरूपण किया और सप्तम अष्टम अध्याय में उसकी विभूति का संक्षेप से वर्णन किया। दशम अध्याय में उन्हीं विभूतियों का विस्तार से वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् अपने भक्त के अवश्य कर्तव्य विषय का प्रतिपादन करते हैं।

श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाबाहो! अर्जुन!

फिर भी मेरे परमात्मनिष्ठ वचन को सुनो, जो कि मैं अत्यन्त प्रेम रखनेवाले तुम्हारे लिये हित की कामना से कहूँगा। मेरे प्रभाव अर्थात् नानाविभूति द्वारा आवि-र्भाव को देवगण और भृगु आदि महर्षिगण भी नहीं जानते हैं, क्योंकि मैं समस्त देवता और महर्षियों का आदि कारण हूँ अर्थात् मेरे बिना अनुग्रह के मुझे कोई भी नहीं जानता। जो मुझको सबका कारण होने से अनादि, अज (जन्मरहित) और लोकों का महान् ईश्वर जानता है वह मनुष्यों में संमोहरहित होकर सब

पापों से छूट जाता है। हे अर्जुन! बुद्धि (सारासार विवेक-निपुणता), ज्ञान, असंमोह (अव्याकुलता,) क्षमा, सत्य, दम (बाह्येन्द्रिय संयम), शम (अन्तःकरण संयम), सुख, दुःख, भव (उद्भव), अभाव (प्रलय), भय, अभय, अहिंसा, समता, तुष्टि, तप, दान, यश, अपयश, ऐसे ये प्राणियों के नाना प्रकार के भाव मेरी ही प्रेरणा से होते हैं। भृगु आदि सप्तर्षिगण और उनके भी पूर्वज सनक आदि चार महर्षिजन तथा स्वायंभुव आदि चौदह मनु, मेरे भाववाले सबके सब मेरे संकल्पमात्र से

उत्पन्न हुए हैं जिन भृगु सनकादिकों की ये ब्राह्मणादि पुत्र पौत्र शिष्य आदि रूप प्रजा हैं। जो इस मेरी विभूति और योग को ठीक ठीक जानता है, वह निःसंदेह योग के द्वारा मुझमें स्थित रहता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। मैं समस्त जगत् का कारण हूँ और समस्त जगत् मेरे ही द्वारा चेष्टायमान होता है। इस प्रकार जानकर बुद्धिमान् भक्त लोग श्रद्धा और भक्ति से मुझ परमेश्वर का निरन्तर भजन करते है; सर्वदा मेरे में मन और इन्द्रियों को लगानेवाले अथवा प्राणों को अर्पण करने-

वाले, निरन्तर मेरी चर्चा करनेवाले संतुष्ट होकर मुझमें रमण करते हैं। इस तरह निरन्तर भजनेवाले को मैं बुद्धिरूप योग (उपाय) को देता हूँ जिस उपाय के मिलने से वे मुझको प्राप्त होते हैं। मैं उनके अन्तःकरण में स्थित होकर अज्ञान से होनेवाले संसाररूप तम (अन्धकार) को प्रकाशमय तत्त्वज्ञान रूप दीपक के द्वारा नष्ट करता हूँ। अर्जुन बोले कि हे केशव! आप परब्रह्म-परमधाम, परम पवित्र, शाश्वत (नित्य), पुरुष, दिव्य (स्वप्रकाश) आदिदेव, अज और विभु (व्यापक) हैं। ऐसा भृगु आदि

सब ऋषि, देवर्षि नारद, असित, देवल और वेदव्यासजी कहते हैं उसको मैं सत्य मानता हूँ, आपके व्यक्ति (लीलामय स्वरूप) को देवता और दानव नहीं जानते हैं। हे पुरुषोत्तम! हे भूतों के उत्पन्न करनेवाले! हे भूतों के ईश्वर! हे देवों के देव! हे जगत्पते! आप स्वयं ही अपने से आपको जानते हैं। सिवाय आपके दूसरा नहीं जानता इसलिये आप स्वयं ही अपनी दिव्य विभूतियों का पूर्णरूप से वर्णन करने योग्य हैं, जिन विभूतियों के द्वारा आप इन समस्त लोकों को

व्याप्त कर स्थित हैं। हे योगिन् ! किस प्रकार किन विभूतियों के द्वारा चिन्तन करता हुआ आपको जानूँ और आप किन किन भावों में मेरे द्वारा चिन्तन करने योग्य हैं। हे जनार्दन ! अपने योग और सर्वज्ञत्व सर्वशक्तित्व आदि लक्षणवाले योगैश्वर्य विभूति को फिरसे विस्तारपूर्वक कहिये, क्योंकि आपके अमृत-रूप वचन को सुनने से तृप्ति नहीं हो रही है। श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे कुरुश्रेष्ठ ! अब मैं अपनी विभूतियों को प्रधान रूप से सुनाऊँगा क्योंकि मेरे विस्तार का

अन्त नहीं है। हे गुडाकेश ! अर्थात् निद्रा को जीतने-वाले ! मैं सब भूतों के अन्तःकरण में स्थित सबका आत्मा हूँ और सब भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ। हे अर्जुन ! मैं कश्यप की स्त्री अदिति के पुत्रों में विष्णु (वामन), ज्योतियों में अंशुमान् सूर्य, उनचास वायु देवताओं में मरीचि वायु, नक्षत्रों में शशी (चन्द्रमा), वेदों में सामवेद, देवों में इन्द्र, इन्द्रियों में मन, भूतों में चेतनाशक्ति (ज्ञानशक्ति) एकादश रुद्रों में शंकर, यक्ष राक्षसों में कुबेर, आठ वसुओं में

अग्नि, पर्वतों में सुमेरु पर्वत, पुरोहितों में देवताओं के मुख्य पुरोहित बृहस्पति, सेनापतियों में स्वामिकार्तिक, स्थिर जलाशयों में समुद्र, महर्षियों में भृगु, पदात्मक वचनों में एक अक्षर (ओंकार), श्रौत स्मार्त यज्ञों में जपयज्ञ, स्थिर रहनेवालों में हिमालय पर्वत, सब वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ, सिद्धों में कपिल मुनि, अश्वों में अमृत के लिये क्षीर समुद्र के मन्थन से उत्पन्न उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, हाथियों में ऐरावत हाथी

मनुष्यों में राजा, आयुधों (शस्त्रों) में वज्र, गौवों में कामधेनु और सन्तानोत्पत्ति का कारणभूत कामदेव हूँ। हे अर्जुन! सर्पों में वासुकि, नागों में अनन्त (शेष-नाग), जलचरों में वरुण, पितरों में अर्यमा, शासन करनेवालों में यमराज, दैत्यों में प्रह्लाद, वश करने-वालों में अथवा गणना करनेवालों में काल (समय), मृगों (पशुओं) में सिंह, पक्षियों में गरुड़, पवित्र करने-वालों में अथवा वेगवानों में वायु, शस्त्रधारियों में राम (रामचन्द्र या परशुराम), मछलियों में मकर (तिमिङ्गिल

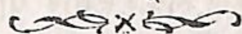
नामक मत्स्यविशेष), नदियों में जाह्नवी (गङ्गा), सृष्टियों का आदि अन्त मध्य, विद्याओं में अध्यात्म विद्या, वादियों में सिद्धान्त, अक्षरों में अकार, समासों में उभयपद में प्रधानता होने से द्वन्द्व समास हूँ और अक्षय (प्रवाहरूप) काल हूँ तथा कर्मफल के विधाताओं में विश्वतोमुख धाता हूँ। हे अर्जुन! मैं सबका संहार-कर्ता मृत्यु हूँ और आगे उत्पन्न होनेवालों की उत्पत्ति का कारण हूँ तथा स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ। हे अर्जुन! सामवेद के मन्त्रों में

बृहत्साम, छन्दों में गायत्री छन्द, मासों में मार्गशीर्ष, ऋतुओं में वसन्त ऋतु, छल करनेवालों में द्यूत (जूआ), तेजस्वियों में तेज, जयशीलों में जय, व्यवसायियों में व्यवसाय (उद्योग), सात्त्विकों में सत्त्व, वृष्णिवंशियों में वासुदेव, पाण्डवों में धनञ्जय (अर्जुन), वेदार्थ के मननशील मुनियों में वेदव्यास, कवियों में उशना (शुक्राचार्य), दमन करनेवालों में दण्ड, जीतने की इच्छा करनेवालों में नीति, गुह्यों (गोप्यों) में गोपन-हेतु मौन और तत्त्वज्ञानियों में ज्ञान हूँ। हे अर्जुन! जो

समस्त भूतों का बीज (उत्पत्ति का कारण) है वह भी मैं ही हूँ क्योंकि चराचर प्राणियों में ऐसा कोई भी नहीं है जो मुझसे रहित हो अर्थात् मैं सबमें हूँ। हे परन्तप ! अनन्त होने के कारण मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है यह तो मैंने अपनी विभूतियों का विस्तार संक्षेप से कहा है। जोजो भी ऐश्वर्ययुक्त, सम्पत्तियुक्त, प्रभावबल-युक्त सत्त्व (वस्तु) हैं उन सबको तुम मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न जानो। अथवा हे अर्जुन ! इन सब विभूतियों को पृथक् पृथक् जानने से तुम्हें क्या प्रयोजन है ? इस

समस्त जगत् को अपनी योगमाया के अंश से धारण कर मैं स्थित हूँ।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद में विभूतियोग नामक दशम अध्याय समाप्त हुआ।



श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

दशम अध्याय का माहात्म्य

श्री शंकर भगवान् पार्वतीजी से, श्री विष्णु भगवान् लक्ष्मीजी से बोले कि हे देवि! अब दशम अध्याय का माहात्म्य कहता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये। श्री काशी-पुरी में एक ब्रह्मज्ञानी तपस्वी ब्राह्मण रहता था और प्रतिदिन विश्वनाथजी के दर्शन के लिये जाया करता था। एक दिन जब विश्वनाथजी के दर्शन को गया और वहाँ बैठकर ध्यान करने लगा तब भृङ्गी नामक गण ने ब्राह्मण को ध्यान में मग्न देखकर विश्वनाथजी से कहा कि हे स्वामी! यह ब्राह्मण कौन है जो कि आपके हृदय में आपका दर्शन

कर रहा है। इसने कौन सी तपस्या की है ? श्री शंकर भगवान् ने भृङ्गी नामक गण से कहा कि मैं इस विषय में एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ जिसके श्रवण से महान् पापों का नाश हो जाता है। एक समय मैं पार्वतीजी के साथ कैलाश पर्वत पर बैठा था। इतने में एक हंस कमल का फूल लेकर हमारे पास आया और फूल को चढ़ाकर प्रणाम किया तथा हमारी आज्ञा से बैठ गया। वह हंस काले रंग का था। हमने उस हंस से पूछा कि हे हंस! तुम कौन हो और तुम्हारा शरीर काला क्यों है। हंस ने कहा कि हे भगवन्! मैं ब्रह्मा का वाहन हूँ। एक समय आपके दर्शन के लिये जब ब्रह्मलोक से चला तो मानसरोवर के समीप आने पर अकस्मात् मेरी गति अवरुद्ध हो गई और मैं मूर्छित हो जमीन पर गिर गया। बाद होश होने पर मैंने अपने शरीर को काला देखा तब मुझे बड़ी चिन्ता हुई, परन्तु कोई कारण मालूम न हुआ। उसी समय मानसरोवर से आवाज सुनाई दी कि हे हंस! इधर आकर गिरने का कारण सुनो। वहाँ जाकर मैंने कमलों के बीच एक कमलिनी को देखा। उस कमलिनी ने मुझसे कहा कि हे हंस! मेरे ऊपर होकर उड़ने के कारण तुम्हारा शरीर काला हो

गया है। मैंने कमलिनी से पूछा कि आप कौन हैं और कमलिनी कैसे हो गई। तब उसने कहा कि मैं पूर्वजन्म में ब्राह्मणी थी। मेरे पास एक मैना थी उसे पढ़ा रही थी। इतने में मेरे पतिदेव आ गये। उनको देखकर मैंने उनका यथोचित सत्कार नहीं किया। उन्होंने क्रुद्ध होकर मुझे शाप दे दिया कि तू भी मैना हो जा। बाद में मैं मैना हो गई और एक मुनि के आश्रम में रहा करती थी। वह मुनि श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय का प्रतिदिन पाठ किया करते थे और मैं भी सुना करती थी। दूसरे जन्म में मैं पाठ के प्रभाव से पद्मावती नामक अप्सरा हो गई। एक दिन मैं इसी सरोवर में जल-क्रीड़ा कर रही थी। इतने में दुर्वासा मुनि आये और मैं उनको देखकर भय से कमलिनी का रूप धारण कर कमलों के बीच छिप गई, परन्तु दुर्वासा मुनि ने मुझे नग्न होकर जल-क्रीड़ा करते देख लिया था इसलिये क्रुद्ध होकर शाप दे दिया कि इसी रूप में सौ वर्ष तक तुमको रहना पड़ेगा। हे हंस! आज सौ वर्ष पूरा हो गया और मैं शाप से मुक्त हो गई। मुझे पूर्वजन्म का ज्ञान तथा कमलिनी के वेष में रहकर बोलने की सामर्थ्य जो तुम देख रहे हो यह सब श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय



अध्याय दस सुनने से कमलिना रूपी पदमावती और हंस की मुक्ति

के श्रवण का फल है। 'अब मैं स्वर्ग को जाती हूँ' कहकर अप्सरा रूप में होकर वह स्वर्ग को चली गई। जाते समय उस अप्सरा ने मुझसे कहा कि जब तुम किसी ब्राह्मण से श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय का पाठ सुनोगे तब तुम्हारा शरीर पहिले के समान हो जायगा, अन्त में विष्णुलोक भी मिलेगा। श्री विश्वनाथजी भृङ्गी गण से कह रहे हैं कि इस प्रकार हंस ने अपना काला होने का समाचार मुझसे कहा और मेरा दर्शन कर बोला कि अब मैं किसी ब्राह्मण के पास श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय का पाठ श्रवण करने जाऊँगा। यह कहकर हंस चला गया और वन में जहाँ पर एक तपस्वी ब्राह्मण बैठा श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय का पाठ कर रहा था वहाँ गया और हंस ने दशम अध्याय के पाठ का श्रवण किया। उससे हंस-शरीर से मुक्त होकर ब्राह्मण-शरीर में जन्म लिया है। यह वही ब्राह्मण है। इसने पूर्वजन्म में दशम अध्याय का पाठ श्रवण किया था उसी स प्रभाव से इस जन्म में तपस्वी और ब्रह्मज्ञानी हुआ है और मेरा एकाग्र चित्त से ध्यान कर हृदय में दर्शन कर रहा है।

श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता–भाषा

विश्वरूपदर्शन योग नामक एकादश अध्याय का कथा-प्रसंग

दशम अध्याय में श्रीकृष्ण ने अपनी विभूति, योगशक्ति और उनके जानने का माहात्म्य संक्षेप में वर्णन करके भक्तियोग तथा उसके फल का निरूपण किया। इसके बाद अर्जुन ने भगवान् की स्तुति करके दिव्य विभूतियों का और योगशक्ति का विस्तार से वर्णन करने के लिये प्रार्थना की। तब श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियों का वर्णन करके योगशक्ति

का प्रभाव बतलाते हुए समस्त ब्रह्माण्ड अपने एक अंश में धारण किया हुआ कहकर अध्याय का उपसंहार किया। अब उस विश्वात्मक परमेश्वर रूप को प्रत्यक्ष रूप में देखने की इच्छा से एकादश अध्याय में भगवान् की और उनके उपदेश की प्रशंसा करते हुए अर्जुन उनसे विश्वरूप के दर्शन कराने की प्रार्थना करते हैं।

अर्जुन बोले कि हे भगवन्! मेरे ऊपर कृपा कर शोक-निवृत्ति के परम (परमात्मनिष्ठ) गोप्य भी आत्मानात्म विवेक-विषयक वचन (अशोच्यानन्वशोचस्त्वम

इत्यादि उपदेश) आपके द्वारा जो कहा गया, उससे मेरा यह अज्ञान (मैं मारनेवाला, ये मारे जानेवाले इत्यादि) नष्ट हो गया है। हे कमलनेत्र ! मैंने भूतों की उत्पत्ति तथा प्रलय और आपका अविनाशी माहात्म्य सुना है। आप अपने को जैसा कहते हैं, मुझे इस विषय में संदेह नहीं है। परन्तु आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य, तेजयुक्त रूप को कुतूहलवश प्रत्यक्ष में देखना चाहता हूँ। यदि मैं उस रूप को देखने लायक हूँ और आप उचित समझते हैं तो उस रूप का मुझे

दर्शन कराइये। श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे पार्थ ! मेरे सैकड़ों तथा हजारों नाना प्रकार के, दिव्य, नाना वर्ण तथा आकृति वाले रूपों को देखो। हे अर्जुन ! मुझमें बारह आदित्यों को, आठ वसुओं को ग्यारह रुद्रों को, दोनों अश्विनीकुमारों को और आश्चर्यमय उनचास मरुद्गणों को देखो, जिसको आज तक किसी ने नहीं देखा तथा कोटि वर्ष पर्यन्त सर्वत्र भ्रमण करने पर भी पूर्णरूप से नहीं देख सकता। ऐसे चराचर समस्त जगत् को मेरी देह में एक साथ देखो। परन्तु वह रूप इस

चर्मचक्षु से देखने लायक नहीं है इसलिये तुमको दिव्य दृष्टि देता हूँ। उससे मेरे असाधारण अघटित घटना सामर्थ्य को देखो। सञ्जयजी धृतराष्ट्र से बोले कि हे राजन् ! श्रीकृष्ण ने दिव्य दृष्टि को प्रदान कर अपने ऐश्वर्ययुक्त स्वरूप को दिखाया। उस रूप में अनेक मुख और नेत्र हैं तथा दिव्य अस्त्र-शस्त्र आभूषणों से सुशोभित बाहु हैं। दिव्य माला, वस्त्र, गन्ध का अनुलेपन धारण किये, अनन्त, विश्वतोमुख (विराट स्वरूप) परमेश्वर को अर्जुन ने देखा। एक साथ

हजारों सूर्य के उदय होने पर जो प्रभा हो सकती है वह उस महात्मा विराट स्वरूप के प्रकाश के सदृश होगी। वह आश्चर्यमय रूप देखने के बाद श्रीकृष्णचन्द्र के शरीर में अवयव रूप से एक स्थान में समस्त जगत् को देखा और चकित व हर्षित हो, उस रूप को प्रणाम कर अर्जुन बोले कि हे देव! आपकी देह में आदित्यादि देवों को, समस्त जरायुज अण्डज आदि के समुदाय को देवों के स्वामी ब्रह्मा को, समस्त ऋषियों को और दिव्य सर्पों को देखता हूँ। हे विश्वेश्वर! हे विश्वरूप! आपको

अनेक हाथ पेट मुख नेत्रों से युक्त, सब तरफ से अनन्त रूपशाली और आदि मध्य अन्त से रहित देखता हूँ। मुकुट गदा चक्र के धारी, सर्वतः प्रकाशमान, तेज का पुञ्जरूप, प्रदीप्त अग्नि और सूर्य के समान ज्योतियुक्त, दुर्निरीक्ष्य (दृष्टि न डालने योग्य), अप्रमेय (निश्चय के अयोग्य) सब तरफ से देखता हूँ। हे कृष्ण ! आप अक्षर (ब्रह्म), जगत् के परम निधान (आश्रय), अव्यय (नित्य), धर्म के रक्षक और सनातन पुरुष हैं। मैं आपको आदि मध्य अन्त से रहित, अनन्तप्रभावशाली, अनन्त

बाहुधारी, सूर्य चन्द्ररूप नेत्रधारी, मुखों में प्रदीप्त अग्नि-
धारी, अपने तेज से इस जगत् को संतप्त करनेवाला
देखता हूँ। हे महात्मन्। स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य का
सम्पूर्ण आकाश तथा समस्त दिशाओं को आपने व्याप्त
कर रखा है। आपके इस अद्भुत उग्र (घोर) रूप को
देखकर तीनों लोक अत्यन्त भयभीत हैं। हे कृष्ण ! ये
देवसमुदाय भयभीत होकर आपकी शरण में आ रहे हैं
और कुछ अत्यन्त भयभीत होकर दूर से ही हाथ जोड़-
कर जय जय रक्ष रक्ष कह प्रार्थना करते हैं तथा महर्षि-

गण और सिद्धों के समूह स्वस्ति (कल्याण) हो कहकर स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं।

हे कृष्ण ! जो एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, आठ वसु, साध्य नामक देवता, विश्वेदेव, दो अश्विनीकुमार, उनचास मरुत्, उष्मपा नामक पितर, गन्धर्व, यक्ष, विरोचन आदि असुर और सिद्धों के समूह हैं वे लोग विस्मित होकर आपको देखते हैं। आपके अनके मुख, नेत्र, बाहु, ऊरु (जाँघ), पाद (पैर), उदर और विकराल दाढ़वाले महान् रूप को देखकर समस्त लोक अत्यन्त भयभीत

हो रहा है और मैं भी भयभीत हो रहा हूँ। हे विष्णो! आपके आकाशव्यापी, तेजोयुक्त, अनेक वर्णयुक्त, फैलाये हुए मुख और प्रदीप्त विशाल नेत्रों को देखकर हृदय से भयभीत हुआ मैं धैर्य और शान्ति को ग्रहण नहीं कर सकता हूँ। आपके विकराल दाढ़ और कालानल (प्रलयाग्नि) के समान मुखों को देखकर भयावेश से मुझे दिशाओं का ज्ञान नहीं है और न सुख ही मिलता है। इससे हे जगत् के निवासस्थान! हे देवेश! आप प्रसन्न हों। हे कृष्ण! ये पृथिवी के रक्षक जयद्रथ आदि

राजाओं के साथ धृतराष्ट्र के दुर्योधनादि सभी पुत्र एक साथ आपके मुख में प्रवेश कर रहे हैं और भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, सूतपुत्र (कर्ण), मेरे पक्ष के शिखण्डी धृष्टद्युम्न आदि वीरों के साथ सबके सब आपके विकराल भयङ्कर मुखों में प्रवेश कर रहे हैं। उनमें कई एक चकनाचूर शिरवाले, आपके दाँतों के बीच (संधियों) में लगे हुए देख पड़ते हैं। जिस तरह नदियों के वेग समुद्र के सन्मुख होकर समुद्र में ही प्रवेश करते हैं उसी तरह ये मनुष्यलोक के वीर आपके मुखों में प्रवेश कर रहे हैं।

जिस प्रकार पतङ्ग (फातिङ्गे) मोहवश अत्यन्त वेग के साथ नाश के लिये प्रदीप्त अग्नि में प्रवेश करते हैं। उसी प्रकार ये सब लोकजन भी नाश के लिये अति वेग के साथ आपके मुखों में प्रवेश कर रहे हैं। हे विष्णो! आप अपने मुखों से समस्त लोक के वीरों को ग्रस रहे हैं, सब तरफ से चाट रहे हैं, आपके उग्र तेज सबको सन्तप्त कर रहे हैं। आप उग्ररूपधारी कौन हैं? कृपाकर मुझसे कहिये। आपको नमस्कार है। हे देववर! प्रसन्न होइये। आपके विशेष रूप को जानना चाहता हूँ क्योंकि

आपकी प्रवृत्ति (चेष्टा) को मैं नहीं जानता। इस तरह अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन ! मैं लोकों को ग्रसनेवाला उग्र काल हूँ और लोकों का संहार करने के लिये प्रवृत्त हूँ यद्यपि तुम इनका वध न करोगे तो भी ये भीष्म द्रोण आदि योद्धा मुझ कालात्मा से नाश को प्राप्त हो ही जायँगे ! हे सव्य-साचिन् ! तुम युद्ध के लिये उठो। यश को प्राप्त करो। बिना प्रयास के शत्रुओं को जीतकर धान्य-धन से सम्पन्न राज्य का भोग करो। तुम केवल निमित्तमात्र हो

जाओ क्योंकि ये वीर युद्ध के पूर्व में ही मुझ कालात्मा से मृतप्राय हो गये हैं। द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण, शल्य आदि वीरों को तुम मारो। शोक मत करो, इन शत्रुओं को अवश्य जीतोगे। बाद सञ्जय धृतराष्ट्र से बोले कि हे राजन्! इन वचनों को सुनकर काँपते हुए अर्जुन हाथ जोड़ प्रणाम कर भयभीत हो श्रीकृष्ण से बोले कि हे हृषीकेश! यह उचित ही है जो आपके माहात्म्य-संकीर्तन से केवल मैं ही नहीं प्रसन्न हो रहा हूँ किन्तु समस्त जगत् प्रसन्न हो रहा है, लोग आपमें

अनुराग करते हैं। राक्षस लोग भयभीत हो दिशाओं में भाग रहे हैं। योग तप मन्त्रादि सिद्धों के समूह आपको प्रणाम करते हैं, यह उचित ही है। हे महात्मन् ! हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! ब्रह्मा के भी आदिकर्त्ता सर्वश्रेष्ठ आपके लिये वे लोग किस प्रकार नमस्कार करें ! सत् (व्यक्त) और असत् (अव्यक्त) दोनों से परे मूल कारण जो अक्षर ब्रह्म है वह आपही हैं। आप आदिदेव, सनातन पुरुष, जगत् के परम निधान (लयस्थान), विश्व के ज्ञाता हैं तथा जो कुछ वस्तु-

जात है और परम धाम (वैष्णवपद) हैं वह भी आपही हैं। हे अनन्तरूप! आपने विश्व को व्याप्त कर रखा हैं। हे विष्णो! आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, ब्रह्मा के पिता हैं। आपके लिये सहस्त्रों बार नमस्कार है, बारम्बार नमस्कार है, नमस्कार है। हे अनन्तवीर्य! आगे से और पीछे से नमस्कार है, हे सर्वात्मन्! सब दिशाओं में नमस्कार है, आप अनन्त पराक्रम से युक्त हैं और समस्त जगत् को व्याप्त कर स्थित हैं इससे आप सर्वरूप हैं। मैंने प्रेम या प्रमाद से हे कृष्ण! हे

यादव ! हे सखे ! आदि कहा उसके लिये क्षमा चाहता हूँ। आप सबके गुरु के भी गुरु हैं। आपके, चरणों में प्रणामपूर्वक प्रार्थना है कि जैसे पिता पुत्र के, सखा सखा के, पति स्त्री के अपराध को क्षमा करती है वैसे आप मेरे अपराध को क्षमा करने योग्य हैं। अब आप प्रसन्न हों, और किरीट कुण्डल शंख चक्रगदाधारी चतुर्भुजरूप से हो जाइये। श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन ! डरो मत, आज तक इस रूप को किसी ने नहीं देखा। इस रूप का दर्शन वेदाध्ययन, दान, अग्निहोत्र आदि से नहीं

होता, अब तुम चतुर्भुज रूप को देखो। सञ्जय जी धृतराष्ट्र से बोले कि हे राजन्! इतना कहकर श्रीकृष्ण ने चतुर्भुज रूप का दर्शन कराया और अर्जुन उस रूप को देख प्रसन्न होकर बोले कि हे जनार्दन! अब इस रूप के देखने से चित्त सावधान हुआ। श्रीकृष्ण ने कहा कि हे अर्जुन! देवता इस विराट रूप का दर्शन सर्वदा चाहते हैं, परन्तु जो मेरी प्राप्ति के लिये कर्म करता है, मुझमें परायण है, भक्त है, आसक्तिरहित है

श्रौर वैरभाव से रहित है उसको दर्शन होता है तथा वह पुरुष मुझको प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद में विश्वरूपदर्शनयोग नामक एकादश अध्याय समाप्त हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

एकादश अध्याय का माहात्म्य

श्री शङ्कर पार्वतीजी से और श्रीविष्णु लक्ष्मीजी से बोले कि हे देवि ! एकादश अध्याय का माहात्म्य सुनिये। विवाहमण्डप नगर में होलिका नामक खेतिहर ब्राह्मण रहता था। वह खेती की रखवाली कर रहा था। उसी जगह एक पथिक मनुष्य को हिंसक जीव ने मारकर खा लिया। इतने में वहाँ एक महात्मा पहुँचे और उन्होंने उस पथिक को मरा देखकर उस खेतिहर ब्राह्मण को फटकारा और यह कहा कि तुमने इस पथिक को क्यों नहीं बचाया। तुम राक्षस से कम नहीं हो इससे तुम भी राक्षस हो जाओ। यह शाप देकर महात्मा ने कहा कि जब कोई ब्राह्मण श्रीमद्भगवद्गीता के एकादश



राजपत्र और प्रेत की ग्यारहवें अध्याय का पाठ सुनने से मोक्ष

अध्याय के पाठ से अभिमन्त्रित जल तुम्हारे ऊपर छिड़केगा तब तुम्हारा राक्षस शरीर से उद्धार हो जायगा, यह कहकर महात्मा चले गये और वह खेतिहर राक्षस होकर उसी गाँव में रहने लगा और वहाँ के रहनेवालों को पकड़-पकड़ खाने भी लगा। इस उपद्रव से व्याकुल होकर गाँववालों ने धर्मशाला बनवाकर उसी में उस राक्षस से रहने के लिये प्रार्थना की और कहा कि जो यात्री इसमें आकर ठहरें उनको खाया करो, अब हम लोगों का पिण्ड छोड़ दो। राक्षस मान गया और धर्मशाला में रहने लगा। एक दिन एक ब्राह्मण आया और उस धर्मशाला में ठहर गया परन्तु उस ब्राह्मण को राक्षस ने नहीं खाया। प्रातःकाल लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। धर्मशाला के जमादार ने भी यह देखकर उस दिन आगन्तुक ब्राह्मण को रोक लिया। दूसरे दिन भी वह सकुशल बच गया, परन्तु उस रात्रि में जमादार का लड़का अपने मित्र से मिलने को गया जो कि उस धर्मशाला में ठहरा था। मित्र को बचाने के विचार से गया था इसलिये राक्षस ने उस जमादार के लड़के को और जो यात्री आये थे उन सबको खा लिया। प्रातःकाल जमादार हाथ जोड़कर राक्षस से बोला कि मेरे पुत्र को जिला दो। तब राक्षस ने कहा कि वह जो ब्राह्मण तीन दिन से

धर्मशाला में ठहरा है उससे कहो कि वह जो श्रीमद्भगवद्गीता के एकादश अध्याय का पाठ करता है उससे अभिमन्त्रित जल मुझ पर छिड़क दे तो तुम्हारा लड़का और भी जितनों को मैंने खाया है सब जी जायँगे। बाद जमादार की प्रार्थना से ब्राह्मण ने एकादश अध्याय के पाठ से अभिमन्त्रित जल को राक्षस पर छोड़ा। उस जल के पड़ने से वह राक्षस-शरीर से छूटकर और जमादार का लड़का भी तथा जितनों को राक्षस ने खाया था वे सबके सब विमान पर सवार होकर वैकुण्ठलोक को चले गये। जाते समय जमादार ने पुत्र से रहने के लिये कहा। तब पुत्र ने कहा कि पिताजी! संसार में प्राणी अपने कर्मानुसार फलों को भोगने ही आता है। पिता-पुत्र का सम्बन्ध अनित्य है। कभी मैं पिता, आप पुत्र और कभी आप पिता, मैं पुत्र होता रहा हूँ। आप इस ब्राह्मण से श्रीमद्भगवद्गीता के एकादश अध्याय का पाठ श्रवण करें, इसी से आपका भी उद्धार होग। यह कहकर चला गया। बाद जमादार और ब्राह्मण गीता के पाठ से मुक्त होकर वैकुण्ठलोक को गये।

श्रीमद्भगवद्गीता के एकादश अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता—भाषा

भक्तियोग नामक द्वादश अध्याय का कथा-प्रसंग

दूसरे अध्याय से लेकर यहाँ तक श्रीकृष्ण ने सगुण-साकार परमेश्वर की उपासना की प्रशंसा की। बीच-बीच में कितनी ही जगह निर्गुण-निराकार की उपासना का माहात्म्य वर्णन किया। आखिर में एकादश अध्याय के अन्त में सगुण-साकार भगवान् की अनन्य भक्ति का फल भगवत्प्राप्ति बतलाया और उनके भक्त की विशेष रूप से प्रशंसा भी की। इस पर अर्जुन को जिज्ञासा हुई

कि निर्गुण-निराकार ब्रह्म की और सगुण-साकार भगवान् की उपासना करनेवाले दोनों प्रकार के उपासकों में उत्तम उपासक कौन है, इसके लिये अर्जुन पूछते हैं।

अर्जुन बोले कि हे कृष्ण! जो सगुण-साकार की उपासना करते हैं और जो निर्गुण-निराकार की उपासना करते हैं, उन दोनों प्रकार के उपासकों में उत्तम योगवेत्ता कौन है? श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन! जो मुझमें मन को एकाग्र कर श्रद्धा से मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं वे मुझे अति मान्य हैं। जो इन्द्रियों को वश में कर मन

बुद्धि से परे, अनिर्देश्य, अव्यक्त, सर्वत्रग, अचिन्त्य, कूटस्थ, अचल, ध्रुव ब्रह्म को निरन्तर एकीभावसे भजते हैं और समस्त भूतों के हित में रत रहकर सबमें समान भाव रखते हैं वे योगी मुझको प्राप्त होते हैं। किन्तु देहाभिमानियों को निर्विशेष निराकार अव्यक्त विषय में अधिक क्लेश होता है और जो मुझ परमेश्वर के लिये समस्त कर्मों को समर्पण कर मेरा ध्यान व उपासना करते हैं उनका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-सागर से उद्धार कर देता हूँ। इसलिये मन और व्यवसायात्मिका

बुद्धि को मुझमें लगाओ, मेरे प्रसाद से ज्ञानलाभ होगा, तदनन्तर मुझमें निवास करोगे। यदि मन को स्थिर न कर सको तो सर्वत्र से मन को हटाकर मेरे स्मरण रूप अभ्यास-योग में प्रयत्न करो। यदि यह भी न हो तो मेरे प्रीत्यर्थ एकादशीव्रत, नाम-संकीर्तन, पूजन, अनुष्ठानादि कर्मों को करो। यदि यह भी कर सको तो अपनी इन्द्रियों को वश कर मेरा आश्रय लेकर आवश्यक अग्निहोत्रादि कर्मों के फलों का त्याग करो। मर्म को न जानकर किये हुए अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से मुझ परमेश्वर का

ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी सब कर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है, क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है। जो समस्त प्राणियों का अद्वेष्टा, मैत्र, करुण, ममतारहित, निरहङ्कार, सुख-दुःख में समान, हानि-लाभ में सन्तोष, योग में तत्पर, संयतस्वभाव, मेरे विषय में दृढ़निश्चय, और मुझमें मन बुद्धि को लगानेवाला भक्त है, वह मेरा प्रिय है। जिससे लोक के प्राणी निर्भय रहते हैं और जो लोक के प्राणियों से निर्भय रहता है तथा हर्ष, अमर्ष (असहन), भय, उद्वेगरहित

मेरा भक्त है वह मेरा प्रिय है। जो अनपेक्ष, शुचि, दक्ष, उदासीन, गतव्यथ और समस्त उद्यमों का परित्यागी मेरा भक्त है वह मेरा प्रिय है। जो प्रिय के मिलने पर प्रसन्न और अप्रिय के मिलने पर अप्रसन्न नहीं होता तथा प्रिय वस्तु के नाश होने पर सोच नहीं करता और अप्राप्त वस्तु की चाहना नहीं करता तथा शुभ अशुभ दोनों का परित्यागी मेरा भक्त है वह मेरा प्रिय है जो शत्रु मित्र, मान अपमान, सर्दी गर्मी, सुख दुःख में समान, सङ्गरहित, निन्दा स्तुति में समान, मौनी

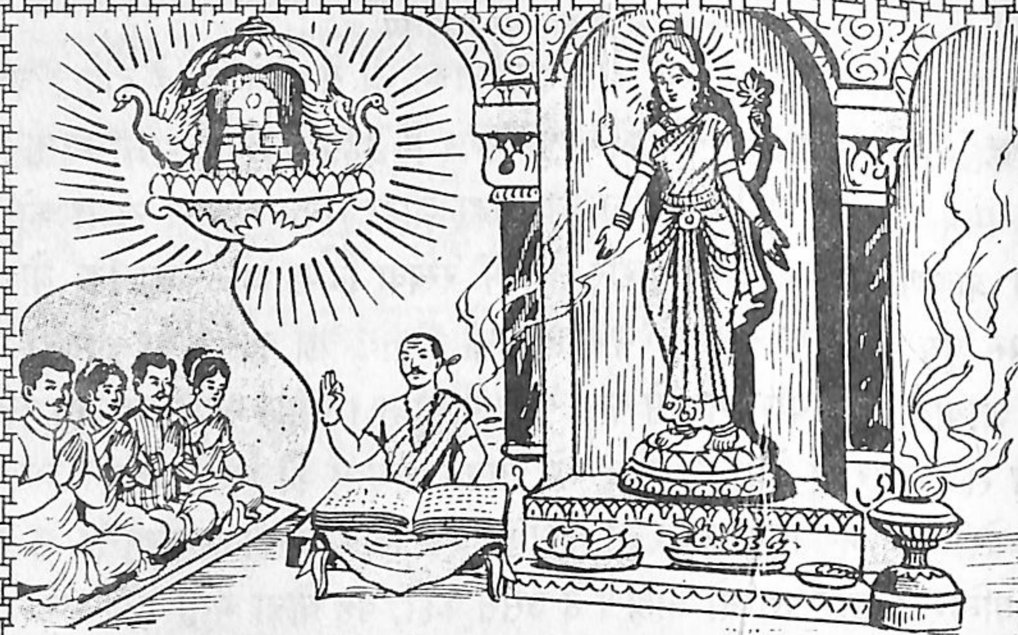
(संयतवक्ता) यत्किञ्चित् लाभ से संतुष्ट, अनिकेत (निश्चित स्थान रहित) और स्थिरमति है वह भक्त मेरा प्रिय है। परन्तु जो श्रद्धापूर्वक मुझमें परायण होकर पूर्वोक्त धर्ममय अमृतरूप भक्तियोग की उपासना करते हैं वे मुझको अधिक प्रिय हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद में भक्तियोग नामक द्वादश अध्याय समाप्त हुआ।



द्वादश अध्याय का माहात्म्य

श्री शंकर पार्वतीजी से और श्री विष्णु लक्ष्मीजी से बोले कि हे देवि ! बारहवें अध्याय का माहात्म्य भी सुनिये। कोल्हापुर नगर में बृहद्रथ नामक राजा रहता था। उसने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया, यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया। परन्तु राजा की मृत्यु हो गई। ब्राह्मणों ने राजा का शरीर तैल में रखवा दिया और कहा कि घोड़ा के लौटने पर पुत्र के द्वारा यज्ञ की समाप्ति होगी। जब यज्ञ का घोड़ा लौटकर यज्ञ-स्थल में आया तब दैवयोग से उसे कोई चुरा ले गया। खोज करने पर जब पता न चला तब राजकुमार ने देवी के मन्दिर में जाकर प्रार्थना की कि हे देवि ! इस धर्म-संकट से मेरी तथा मेरे पिता की रक्षा करो। देवी ने प्रसन्न होकर कहा कि हे राज-कुमार ! मन्दिर के द्वार पर जो ब्राह्मण है उससे कहो, वह घोड़ा मँगा देगा। देवी की आज्ञा से राजकुमार ने उस ब्राह्मण से कहा। ब्राह्मण ने इन्द्रादि सब देवताओं को बुलाकर राजकुमार को घोड़ा दे देने का कहा। देवताओं ने घोड़ा दे दिया। घोड़ा



गीता के बारहवें अध्याय के सुनने से मुक्ति

पाकर राजकुमार ब्राह्मण से बोला कि हे भूदेव ! मेरे पिता का मृतशरीर तैल में रक्खा है, उनको जिला दें तो बड़ी कृपा होगी। ब्राह्मण को दया हो आई और राजा के शव पर जल छिड़का। जल के पड़ते ही राजा बृहद्रथ जी उठा और हाथ जोड़कर ब्राह्मण से बोला कि हे पृथ्वी के देवता ! आपने किसके प्रभाव से यह अद्भुत काम किया। ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन् ! मैं श्रीमद्भगवद्गीता के द्वादश अध्याय का नित्य पाठ करता हूँ यह उसीका प्रभाव है। बाद राजा बृहद्रथ ने यज्ञ समाप्त किया और जीवन पर्यन्त श्रीमद्भगवद्गीता के द्वादश अध्याय का पाठ कर वैकुण्ठ-लोक को गया।

श्रीमदभगवद्गीता के द्वादश अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।



श्रीमद्भगवद्गीता–भाषा

प्रकृतिपुरुषविवेकयोग नामक त्रयोदश अध्याय का कथा-प्रसङ्ग

बारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने निर्गुणोपासक की अपेक्षा सगुणोपासक को श्रेष्ठ बताया और निर्गुण उपासना का स्वरूप, फल तथा साधन में विशेष कष्ट बताया। तदनन्तर सगुण उपासना का महत्त्व, फल, प्रकार भक्तों के लक्षण कहने के बाद कहा कि मैं एकान्त भक्तियोग से उपासकों का मृत्युसंसार से उद्धार करता हूँ परन्तु बिना आत्मज्ञान के उद्धार होना असम्भव है

अतः प्रकृतिपुरुषविवेक नामक अध्याय आरम्भ करते हैं। सप्तम अध्याय में अपरा और परा नामक दो प्रकार की प्रकृति कही, उन दोनों के अविवेक से जीवभाव को प्राप्त चिदंश को संसार होना कहा, जिन दो प्रकृतियों के द्वारा ईश्वर सृष्टि आदि कार्य में प्रवृत्त होता है वही दो प्रकृति कही गई है। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ शब्दवाच्य परस्पर अत्यन्त विलक्षण हैं केवल अज्ञान से ही इन दोनों की एकता सी प्रतीति होती है। अतः श्रीकृष्ण क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के लक्षण बतलाते हैं।

श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे अर्जुन ! यह शरीर 'क्षेत्र' इस नाम से कहा जाता है और इसको जो जानता है उसको 'क्षेत्रज्ञ' इस नाम से ज्ञानीजन कहते हैं। सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) मुझे जानो, और क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का जो वास्तविक रूप जानता है वही ज्ञानी है। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का तत्त्व ऋषियों द्वारा वेद, ब्रह्मसूत्र आदि के प्रमाण देकर बहुत प्रकार से कहा गया है। पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, मूलप्रकृति (त्रिगुण-मयी माया), दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच इन्द्रियों

के विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), इच्छा द्वेष सुख, दुःख, स्थूल देह का पिण्ड, चेतना और धृति इस प्रकार विकारों के सहित यह क्षेत्र संक्षेप में कहा गया। श्रेष्ठत्वाभिमान का अभाव, दम्भ का अभाव, अहिंसा, क्षान्ति, सरलता, सद्गुरु की सेवा, शुद्धि, सन्मार्ग में निष्ठा, शरीरसंयम, इन्द्रियों के विषयसुखभोगों में वैराग्य, अहङ्काररहित, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि में दुःख-दोषों का बार बार विचार करना, पुत्र स्त्री गृह धन आदि में आसक्ति का अभाव, ममता

का अभाव, प्रिय अप्रिय में समभाव, मुझ परमेश्वर में अव्यभिचारिणी भक्ति, एकान्त और शुद्ध देश में वास, विषयासक्त मनुष्यों में प्रेमाभाव अध्यात्मज्ञान में स्थिति और तत्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को ही देखना, यह सब ज्ञान है और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है। जो जानने योग्य है और जिसके ज्ञान से मनुष्य परम सुख का भागी होता है उसको कहूँगा। वह आदिरहित श्रेष्ठ ब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही, वह सब ओर हाथ

पैर नेत्र शिर मुख कानवाला होकर लोक में सबको व्याप्त करके स्थित है। वह समस्त इन्द्रियों के विषयों में तदाकार होकर भासता है परन्तु इन्द्रियों से रहित है, सङ्गशून्य है किन्तु सबका आधारभूत है, गुणरहित है परन्तु गुणों को भोक्ता (पालक) है, चराचर सब भूतों के बाहर भीतर परिपूर्ण है और चर अचर रूप भी वही है, सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है, अत्यन्त समीप में और दूर में भी स्थित वही है। वह अविभक्त है पर सब भूतों में विभक्त-सा प्रतीत होता है। विष्णुरूप से

पालन, रुद्ररूप से संहार और ब्रह्मारूप से सृष्टि करनेवाला है। वह तम (माया) से परे है, ज्योतियों की भी ज्योति है, ज्ञान है, ज्ञेय है, ज्ञानगम्य है और सबके हृदय में स्थित है। इस प्रकार क्षेत्र, ज्ञान, ज्ञेय परमात्मा का स्वरूप संक्षेप से कहा गया, मेरा भक्त इसको जानकर मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है। प्रकृति और पुरुष इन दोनों को अनादि समझो तथा राग-द्वेषादि विकारों को और त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थों को प्रकृति से ही उत्पन्न समझो। कार्य

और कारण की उत्पत्ति में हेतु प्रकृति कही गई है और जीवात्मा सुख दुःखों के भोगने में हेतु कहा जाता है। प्रकृति में तादात्म्य रूप से स्थित पुरुष प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थों को भोगता है और इन गुणों का सङ्ग ही इस जीवात्मा को अच्छी बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण है। यह पुरुष इस शरीर में स्थित होकर भी इससे परे (भिन्न) है, यह समीप में स्थित होकर केवल द्रष्टामात्र है और अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता, महेश्वर तथा परमात्मा कहा गया है। इस प्रकार पुरुष

को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य जानता है वह पुरुष विधित्याग करने पर भी मुक्त हो जाता है। कुछ लोग ध्यान से, सांख्य से, अष्टाङ्ग योग से और निष्काम कर्मयोग से देह में आत्मा को देखते हैं, इनसे भिन्न लोग गुरूपदेश श्रवण करके उपासना द्वारा संसार को पार कर जाते हैं। हे अर्जुन! समस्त वस्तुजात को क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न समझो। जो चराचर सभी में परमात्मा को समभाव से देखता है वह सच्चिदानन्दरूप आत्मा का तिरस्कार नहीं करता

और अन्त में मोक्ष को प्राप्त होता है। जो प्रकृति के द्वारा कर्मों का होना और आत्मा को अकर्ता देखता है वही ठीक से देखता है। जो समस्त स्थावर जङ्गम को प्रलय-काल में पृथक्भाव से प्रकृति में स्थित और सृष्टिकाल में प्रकृति से समस्त भूतों का विस्तार देखता है वह ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है। यह परमात्मा अनादि और निर्गुण होने से अविकारी है इसलिये शरीर में रहकर भी कुछ नहीं करता और न कर्मफलों से लिप्त होता है। जैसे सर्वत्र पङ्कादि में स्थित आकाश सूक्ष्म होने

से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार देह में स्थित आत्मा दैहिक गुण-दोषों से युक्त नहीं होता। जैसे एक सूर्य सम्पूर्ण लोक को वैसे क्षेत्री (आत्मा) सम्पूर्ण क्षेत्र (शरीर) को प्रकाशित करता है। हे अर्जुन! जो ज्ञान-दृष्टि से क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को और माया से छूटने के उपाय को जानते हैं वे ब्रह्मत्व को प्राप्त होते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद में प्रकृतिपुरुषविवेकयोग नामक त्रयोदश अध्याय समाप्त हुआ।





तेरहवें अध्याय के श्रवण से चण्डालनी गणिका की मुक्ति

त्रयोदश अध्याय का माहात्म्य

श्री शङ्कर भगवान् पार्वतीजीसे और विष्णु भगवान् लक्ष्मीजी से कहते हैं कि हे देवि ! तेरहवें अध्याय का माहात्म्य सावधान होकर सुनिये। दक्षिण में तुङ्गभद्रा नदी के तट पर हरिहरपुर नामक नगर है। वहाँ एक हरिदीक्षित नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री व्यभिचारिणी और दुश्चरित्रा थी। जब वह मर गई तब यमलोक की यातना भोगने के बाद चाण्डाल के घर पैदा हुई और फिर भी व्यभिचारिणी हुई। संयोगवश उस चाण्डालिन ने एक दिन पास के श्रीशिवजीके मन्दिर में एक ब्राह्मण को श्रीमद्भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय का पाठ करते देखा। कुछ शब्द इस चाण्डालिन के कान में भी पड़े जिससे चाण्डालिन के पाप नष्ट हो गये और मरने पर वह वैकुण्ठ लोक को विमान पर सवार होकर चली गई।

श्रीमद्भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।



श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

गुणत्रयविभागयोग नामक चतुर्दश अध्याय का कथा-प्रसङ्ग

तेरहवें अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के लक्षणों को कहकर उन दोनों के ज्ञान को ही ज्ञान बतलाया तथा उसके अनुसार क्षेत्र के स्वरूप, स्वभाव, विकार और उसके तत्त्वों की उत्पत्ति के क्रम आदि तथा क्षेत्रज्ञ के स्वरूप, प्रभाव का वर्णन किया और प्रकृति से गुणों की उत्पत्ति कहकर अच्छी बुरी योनि में जन्म होने में गुणों का सङ्ग ही हेतु बतलाया। अब सत्त्व रज तम क्या वस्तु

है इसका वर्णन श्रीकृष्ण भगवान् करते हैं।

श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन! ज्ञानों में उत्तम ज्ञानको कहूँगा, जिसको जानकर मुनिजन सिद्धि को पा गये हैं। इस ज्ञान के आश्रय से मुझसे एकरूपता को प्राप्त हुए लोग सृष्टिकाल में भी नहीं जन्मते और प्रलयकाल में भी व्यथा नहीं पाते। महद्ब्रह्म (प्रकृति) मेरी ही योनि है, मैं उसमें गर्भ (चिदाभास) रखता हूँ, फिर उससे समस्त भूत उत्पन्न होते हैं। पशु-पत्ती आदि सब योनियों में जो मूर्तियाँ जन्मती हैं उनकी योनि महद्ब्रह्म है और

मैं बीजदाता पिता हूँ। प्रकृति के सत्त्व रज तम ये गुण देह में रहनेवाले अव्यय (निर्विकार) आत्मा को देह में बाँध लेते हैं। इन गुणों में स्वच्छता के कारण प्रकाश डालनेवाला जो निर्दोष सत्त्वगुण है वह सुख और ज्ञान के साथ प्राणी को बाँधता है। रजोगुण का स्वभाव रागात्मक है, तृष्णा और आसक्ति पैदा करता है, वह प्राणी को प्रवृत्तिरूप कर्म करने के संग में बाँध डालता है। किन्तु तमोगुण अज्ञान से उपजता है, वह सब प्राणियों को मोह में डालकर प्रमाद, आलस्य, निद्रा से बाँध लेता है। सत्त्व-

गुण सुख में, रजोगुण कर्म में, तमोगुण ज्ञान को ढँककर प्रमाद में आसक्ति पैदा करता है। रज और तम को दबा-कर सत्त्व एवं सत्व और तम को दबाकर रज तथा सत्व और रज को दबाकर तम अधिक हुआ करता है। जब इस देह की सब इन्द्रियों में निर्मल ज्ञान उत्पन्न होता है तब समझना चाहिये कि सत्वगुण बढ़ा है। रजोगुण बढ़ने से लोभ, कर्म की ओर प्रवृत्ति और उसका आरम्भ, अतृप्ति एवं इच्छा उत्पन्न होती है। तमोगुण की वृद्धि होने पर अँधेरा, कुछ भी न करने की इच्छा, प्रमाद (कर्तव्य

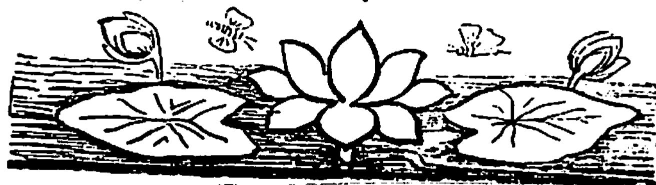
की विस्मृति), और मोह उत्पन्न होता है। सत्वगुण की वृद्धि में मरने से स्वर्गादि लोक में, रजोगुण की वृद्धि में मरने से मनुष्ययोनि में और तमोगुण की वृद्धि में मरने से पशु-पक्षी आदि मूढ़ योनियों में जन्मता है। पुण्यकर्म का फल सात्विक है, राजस कर्म का फल दुःख और तामस कर्म का फल अज्ञान होता है। सत्वसे ज्ञान, रजोगुण से लोभ और तमोगुण से प्रमाद, मोह, अज्ञान होता है। सात्विक पुरुष स्वर्गादि लोकों में, राजस मनुष्यलोक में, तामस नरकों में जाते हैं। विवेकी द्रष्टा जब गुणों से

भिन्न किसी और को कर्ता नहीं देखता और गुणों से परे आत्मा को पहचान जाता है तब वह मेरे स्वरूप में मिलता है। देह के कारणभूत तीनों गुणों को अतिक्रमण कर जन्म मृत्यु जरा के दुःखों से विमुक्त होकर मोक्ष का अनुभव करता है। अर्जुन बोले कि हे कृष्ण! किन लक्षणों से पुरुष को गुणों से अतीत होना जानें, और गुणातीत पुरुष क्या करता है तथा गुणों से परे कैसे जाता है। श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन! क्रम से सत्व रज तम के कार्य प्रकाश, प्रवृत्ति, मोह के होने पर जो द्वेष नहीं करता

और न मिलने से पाने की इच्छा नहीं करता, उदासीन-सा रहता है, गुणों से विचलित नहीं होता और यह समझता है कि गुण ही अपना अपना काम करते हैं स्वयं डिगना नहीं है, जिसे दुःख सुख समान हैं, जो स्वस्थ है, मिट्टी पत्थर सोना को एकसा देखता है, जिसे निंदा स्तुति समान है, जो धीर है जिसे मान अपमान मित्र शत्रु एक से हैं और जिसके सब काम्य कर्म छूट गये हैं उस पुरुष को गुणातीत कहते हैं। जो अव्यभिचार (एकनिष्ठ) भक्तियोग से मेरी सेवा करता है, वह गुणों को पार कर

ब्रह्मभूत हो जाता है। हे अर्जुन! अव्यय ब्रह्म, अमृत (मोक्ष), शाश्वत धर्म और एकान्तिक सुख का मैं ही आश्रय (प्रतिमा) हूँ अतः मेरी सेवा करनेवाले ब्रह्मत्व को प्राप्त होते हैं यह ठीक ही है।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद में गुणत्रयविभागयोग नामक चतुर्दश अध्याय समाप्त हुआ।



चतुर्दश अध्याय का माहात्म्य

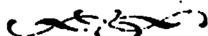
श्रीशङ्कर पार्वतीजी से और श्रीविष्णु लक्ष्मीजी से कहते हैं कि हे देवि ! अब परम पुनीत चौदहवें अध्याय का माहात्म्य सावधान होकर सुनिये। महाराष्ट्र देश में एक ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण रहता था, उसकी स्त्री कुल्टा थी। एक दिन ब्रह्मदत्त ने अपनी स्त्री को व्यभिचार कर्म में रत देखकर जान से मार डाला। स्त्री यमयातना भोगने के बाद कुतिया की योनि में जन्म पाकर राजा के घर रहती थी। ब्राह्मण स्त्री-हत्या के पाप से यमयातना भोगने के बाद खरगोश की योनि में जन्म पाकर वन में रहता था। एक दिन राजा उस कुतिया को साथ में लेकर शिकार खेलने को वन में गया। वहाँ कुतिया ने खरगोश को देखा और उसको दाँतों से पकड़ लिया, परन्तु संयोगवश कुतिया के दाँतों से छूटकर खरगोश भाग गया और पास में मुनि के आश्रम के द्वार पर गिरकर मर गया। बाद कुतिया भी उसी मुनि के आश्रम के द्वार तक गई और अकस्मात् एक वृक्ष की डाल टूटकर उसके शरीर पर गिरी



गीता पाठी के स्पर्श जल से श्वान और सुस्या की मुक्ति अध्याय चौदहवां

जिसमे कुतिया भी मर गई। दोनों उस स्थान पर गिरे जहाँ मुनि के पैर का जल पड़ा था। इसलिये दोनों उस योनि से मुक्त हो विमान पर सवार होकर वैकुण्ठलोक को गये। राजा ने दोनों की दशा देख चकित होकर मुनि से उत्तम गति मिलने का कारण पूछा। मुनि ने कहा कि हे राजन्! मैं प्रतिदिन श्रीमद्भगवद्गीता के चौदहवें अध्याय का पाठ करता हूँ इसीसे मेरे पैरों के जल गिरने से दोनों की सद्गति हो गई। यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और स्वयं भी श्रीमद्भगवद्गीता के चौदहवें अध्याय का पाठ कर परमधाम को गया।

श्रीमद्भगवद्गीता के चौदहवें अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।



श्रीमद्भगवद्गीता—भाषा

पुरुषोत्तमयोग नामक पञ्चदश अध्याय का कथा-प्रसंग

चौदहवें अध्याय में तीनों गुणों के स्वरूप, कार्य, बन्धनकारित्व तथा उत्तम मध्यम निकृष्ट गतियों का विस्तार से वर्णन किया और भगवद्भाव को प्राप्त होने का उपाय तथा फल बतलाया और गुणातीत पुरुष के लक्षण आचरण का वर्णन कर अव्यभिचारी भक्तियोग को ब्रह्मप्राप्ति में सरल उपाय कहा। अब गुणातीत होने में वैराग्य और भगवत्-शरणागति को प्रधान साधन

श्रीकृष्ण बताते हैं।

श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन ! जिस अश्वत्थ वृक्ष की जड़ ऊपर और शाखायें नीचे हैं, वेद पत्ते हैं उसे जिसने जाना वह सच्चा वेदवेत्ता है। जिसकी शाखायें सत्त्व रज तम गुणों से पली हुई, नीचे-ऊपर फैली हुई और विषयरूपी अंकुर से अंकुरित होकर अन्त में कर्म का रूप पानेवाली हैं, उसकी जड़ नीचे मनुष्यलोक में बढ़ती हुई गहरी चली गई है। वैसा उसका स्वरूप अथवा अन्त, आदि और आधारस्थान

भी नहीं मिलता। इस अश्वत्थ को अनासक्तिरूप तलवार से काटकर उस स्थान को ढूँढ़ना चाहिये कि जिससे यह सृष्टिक्रम चला है, मैं उसकी ओर जाता हूँ। जो मान मोह आसक्ति दोष से रहित होकर अध्यात्म-ज्ञान में स्थित है, निष्काम है, सुख-दुःख-संज्ञक द्वन्द्वों से मुक्त है वह ज्ञानी उस अव्यय स्थान को जाता है और फिर लौटता नहीं, ऐसा मेरा स्थान है। उसे सूर्य चन्द्र अग्नि भी प्रकाशित नहीं करते हैं। जीवलोक में मेरा ही सनातन अंश जीव होकर प्रकृति में रहनेवाली

मन सहित छः (मन और पाँच सूक्ष्म) इन्द्रियों को खींच लेता है, इसी को लिङ्गशरीर कहते हैं। जीव जब स्थूल शरीर पाता है तब मन सहित छः इन्द्रियों को साथ ले आता है, जैसे वायु पुष्प आदि स्थान से गन्ध को ले जाती है। कान, आँख, त्वचा, जीभ, नाक मन में ठहरकर यह जीव विषयों को भोगता है। शरीर से निकले हुये या रहनेवाले या गुणों से युक्त होकर उपभोग करनेवाले को अज्ञानी लोग नहीं जानते, उसे ज्ञानी लोग देखते हैं। इसी तरह योगी लोग अपने

मन में आत्मा को पहिचानते हैं, परन्तु अज्ञ लोग प्रयत्न करके भी नहीं देख पाते। जो तेज सूर्य चन्द्र अग्नि के हैं उन्हें मेरा ही समझो। इसी तरह पृथ्वी में प्रवेश कर भूतों को अपने तेज से धारण करता हूँ, चन्द्र होकर औषधियों का पोषण करता हूँ, अग्नि होकर प्राणियों की देह में रहता हूँ और प्राण अपान से युक्त होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ। इसी तरह मैं सबमें स्थित हूँ, स्मृति और ज्ञान एवं अपोहन (प्रमोष) मुझमें ही होता है, सब वेदों से ज्ञेय, वेदान्तकर्ता, वेदवेत्ता

भी मैं ही हूँ। इस लोक में 'क्षर' और 'अक्षर' दो पुरुष हैं। सब भूतों को क्षर और भूतों के मूल (कूट) में स्थित (प्रकृतिरूप अव्यक्त तत्व) को अक्षर कहते हैं। परन्तु उत्तम पुरुष इन दोनों से भिन्न है, उसको परमात्मा कहते हैं, वह त्रैलोक्य में प्रवेश कर पोषण करता है। मैं क्षर और अक्षर से भी उत्तम हूँ अतः वेद में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। जो इस तरह मुझे पुरुषोत्तम समझता है वह सर्वज्ञ होकर मुझे ही भजता है। हे अनघ! यह

गुह्य से भी गुह्य शास्त्र को मैंने कहा, इसे जानकर बुद्धिमान् ज्ञानी और कृतकृत्य हो जावेगा।

श्रीगीता के श्रीकृष्णार्जुन संवाद में पुरुषोत्तमयोग नामक पञ्चदश अध्याय समाप्त हुआ।



श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

पञ्चदश अध्याय का माहात्म्य

श्री शिवजी पार्वतीजी से और श्री विष्णु लक्ष्मीजी से बोले कि हे देवि! अब पन्द्रहवें अध्याय का माहात्म्य सुनिये। गौड़ देश में नृसिंह नाम का राजा था। उसके मन्त्री ने राजा का वध कर स्वयं राज्य करने की इच्छा की परन्तु वह स्वयं मर गया और सिन्ध देश में जाकर घोड़ा हुआ। उस घोड़ा को नृसिंह राजा ने सौदागर से



गीता श्लोक पाठ सुनने और देखने से घोड़ा रूपी राजा नृसिंह की मुक्ति अध्याय पन्द्रहवां

खरीदा और स्वयं उसकी सवारी कर वन में शिकार करने गया। जब राजा को प्यास लगी तब उसने पास के पर्वत पर एक तपस्वी के आश्रम में जाकर जलपान किया और आश्रम के द्वार पर पन्द्रहवें अध्याय का एक श्लोक लिखा देखा। राजा ने श्लोक को पढ़ा और उसे सुनकर घोड़ा उसी समय मरकर स्वर्ग लोक को गया। राजा ने चकित होकर घोड़ा के मरने का कारण आश्रम के तपस्वी से पूछा। तपस्वी ने कहा कि यह आपका मन्त्री था। इसने आपको मारकर राज्य करने की इच्छा की। इस पाप से इसे घोड़ा का जन्म मिला। आपके मुख से श्री गीता के पन्द्रहवें अध्याय का श्लोक सुन पाप से छूटकर स्वर्ग को गया। उस दिन से राजा भी श्री गीता के पन्द्रहवें अध्याय का नित्य पाठकर वैकुण्ठलोक को गया।

श्रीमद्भगवद्गीता के पन्द्रहवे अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

दैवासुरसम्पद्विभागयोग नामक षोड़श अध्याय का कथा-प्रसङ्ग

पन्द्रहवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने बिना वैराग्य के भक्ति और ज्ञान नहीं होता, यह कहकर वृक्षरूपकालंकार से वैराग्यपूर्वक ज्ञान का उपदेश दिया। आखिर में कहा कि इसे जानकर ज्ञानी और कृतकृत्य हो जावेगा अब उस स्थान का अधिकारी वा अनधिकारी कौन है, इसका वर्णन करते हैं।

श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन! अभय, शुद्ध, सात्विक

वृत्ति, ज्ञानयोग में स्थिति, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञादि), तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध उदारता, शान्ति, पर दोष का अप्रकाशन, दीनों पर दया, लोभाभाव, अक्रूरता, लाज, अचपलता, तेज, क्षमा, धृत्ति, शुद्धता, अद्रोह, अतिमान न रखना ये छब्बीस गुण दैवी सम्पदा को प्राप्त पुरुष के लक्षण हैं। दम्भ, दर्प, अतिमान, क्रोध, निष्ठुरता, अज्ञान, ये आसुरी सम्पदा को प्राप्त पुरुष के चिह्न हैं। दैवीसम्पत्ति मोक्षदायक और आसुरी सम्पत्ति बन्धनदायक मानी

जाती है। हे पाण्डव ! तुम दैवी में जन्मे हो, शोक मत करो। इस लोक में दैव और आसुर भेद से दो श्रेणी के जीव हैं। दैव श्रेणी का वर्णन कर दिया अब आसुर श्रेणी का वर्णन सुनो। आसुर लोग प्रवृत्ति और निवृत्ति को नहीं जानते। उनमें शुद्धता, आचार, सत्य नहीं होता। आसुर लोग कहते हैं कि जगत् असत्य, आश्रयरहित, अनीश्वर, अर्थात् इसका कर्ता कोई नहीं है, स्वयं स्त्री के संयोग से उत्पन्न है, सुख भोगने के लिये है। इसके सिवाय और क्या कारण हो सकता है? ऐसे अल्प बुद्धि के नष्टात्मा

क्रूर कर्मवाले दुष्ट लोग जगत् के नाश के लिये उत्पन्न होते हैं। दम्भ, मान, मद से व्याप्त होकर विषयभोग की इच्छा से स्वतंत्र कल्पना करके गन्दे काम को करते हैं। काम को सर्वस्व मानकर कामोपभोग में लीन, सुख की चिन्ता में निमग्न, आशा-पाशों से ग्रस्त, काम-क्रोध में परायण होकर अन्याय से धन सञ्चय की तृष्णा करते हैं। मैंने आज यह पा लिया, कल उसको सिद्ध करूँगा, यह मेरे पास है, वह भी मेरा होगा। इस शत्रु को मार लिया, औरों को भी मारूँगा। मैं ईश्वर,

भोक्ता, सिद्ध, बली, सुखी, सम्पन्न, कुलीन और अद्वितीय हूँ। मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा, मौज करूँगा, इस प्रकार अज्ञान से मोहित, मोहवश अनेक कल्पनाओं में फँसे हुये, विषयोपभोग में आसक्त आसुरी लोग नरक में गिरते हैं। आत्मप्रशंसा करनेवाले, ऐंठ से बर्तनेवाले, धन और मान के मद से युक्त आसुरी लोग दम्भ से विधि का त्यागकर नाम के लिये यज्ञ करते हैं। अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध से फूलकर अपनी पराई देह में स्थित मुझ परमेश्वर के द्वेषी, निंदक, अशुभ

कर्म करनेवाले, क्रूर हैं, उन अधम नरों को मैं पाप-योनियों में पटकता हूँ। प्रत्येक जन्म में आसुरी योनि को पाकर ये मूर्ख मुझे बिना पाये ही अन्त में अधोगति को जाते हैं। काम, क्रोध और लोभ ये तीन नरक के द्वार हैं और नीच योनि में ले जानेवाले हैं, अतः इनका त्याग करना चाहिये। हे अर्जुन! इन तीन नरक द्वार से छूटकर मनुष्य शुभकर्म के द्वारा मोक्ष को पा लेता है। जो विधि का त्यागकर मनमाना करने लगता है उसे न सिद्धि, न सुख, न उत्तम गति ही मिलती है।

इसीलिये कार्याकार्य में शास्त्रों को प्रमाण मानकर तदनुसार तुमको कर्म करना उचित है।

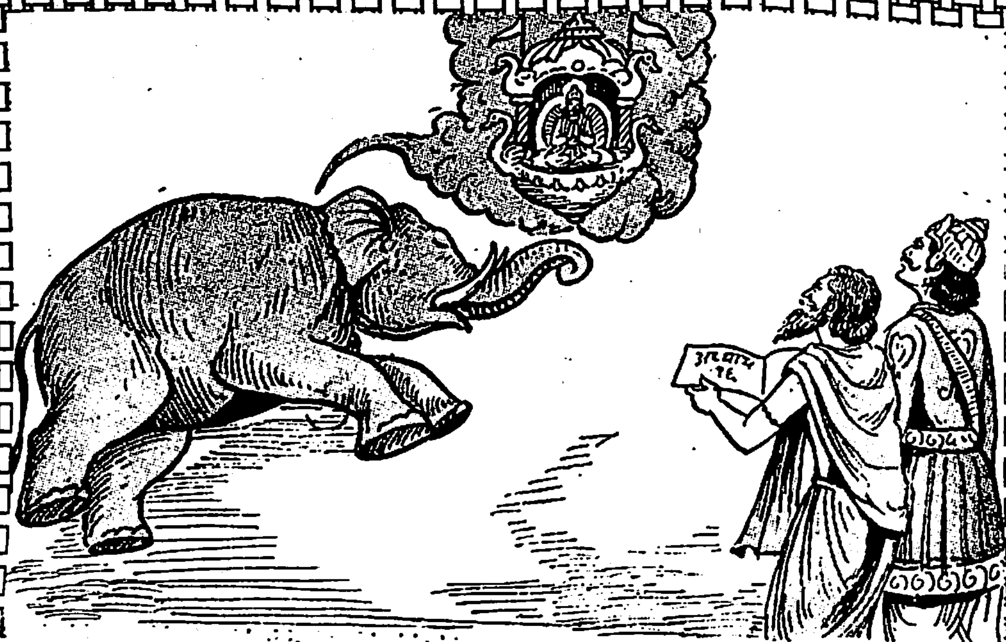
श्रीगीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद में प्रकृतिपुरुषविवेक योग नामक षोडश अध्याय समाप्त हुआ।

— —❀❀❀-—

श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

षोडश अध्याय का माहात्म्य

श्रीशिवजी पार्वतीजी से और श्रीविष्णु लक्ष्मीजी से बोले कि हे देवि ! सोलहवें अध्याय का माहात्म्य सुनिये। सौराष्ट्र नगर में खड्गबाहु नामक राजा था। उसका एक उन्मत्त हाथी सींकड़ ताड़कर भागा और उसे कोई पकड़ न सका। एक ब्राह्मण



अध्याय सोलहा के पाठ के सुनने से हाथी की मुक्ति

स्नानकर श्रीगीताजी का पाठ करता हुआ हाथी के सामने से चला गया और हाथी ने एक तरफ होकर उस ब्राह्मण को राह दे दी। राजा ने चकित होकर उस विप्र से इसका कारण पूछा। विप्र ने कहा कि मैं श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय का नित्य पाठ करता हूँ उसी को यह फल है। उस दिन से राजा ने भी श्रीगीताजी का पाठ करना शुरू कर दिया। एक दिन राजा शिकार करने वन को गया और वहाँ पागल होकर पीलखाने से भागे हुए उसी हाथी को देखा। उसे देखकर साथ के लोग भाग गये परन्तु राजा उसके सामने से होकर चला गया और हाथी कुछ भी न बोला। राजा को गीता में विश्वास हो गया और नगर में आकर राजकुमार को राजगद्दी देकर गीता के सोलहवें अध्याय का अभ्यास कर अन्त में मरने पर वैकुण्ठलोक को गया।

श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

श्रद्धात्रयविभाग योग नामक सप्तदश अध्याय का कथा-प्रसङ्ग

सोलहवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने दैवी और आसुरी सम्पत्ति का विभाग वर्णन किया और सात्विक पुरुष को तत्त्वज्ञान का अधिकारी बतलाया। आखिर में मनमाना कार्य करनेवाले को सिद्धि सुख उत्तम गति नहीं मिलती अर्थात् वह ज्ञान का अधिकारी नहीं होता। इस पर अर्जुन को जिज्ञासा हुई कि विधि त्यागकर श्रद्धा से कार्य करनेवाले को ज्ञान में अधिकार है या नहीं, इसे जानने के

लिये अर्जुन पूछते हैं।

अर्जुन बोले कि हे कृष्ण ! जो शास्त्रविधि को त्याग कर श्रद्धा से यजन करते हैं, उनकी निष्ठा कैसी है— सात्विक, राजस या तामस। श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन ! प्राणिमात्र की श्रद्धा सात्विक, राजस, तामस भेद से तीन प्रकार की होती है, उसको सुनो। वह श्रद्धा स्वभाव के अनुसार होती है। मनुष्य श्रद्धामय है और श्रद्धा के अनुसार ही वह होता है। सात्विक पुरुष देवताओं का, राजस यक्ष राक्षसों का और तामस प्रेत भूतों का यजन करते

हैं। जो दम्भ और अहंकार से युक्त, काम तथा आसक्ति के बल पर शास्त्रविरुद्ध घोर तप को करते हैं, और शरीर के पञ्चमहाभूतों को तथा मुझको कष्ट देते हैं उनको असुर जानो। प्रत्येक प्राणी के आहार, यज्ञ, तप, दान तीन प्रकार के होते हैं, उनको सुनो। आयु, सत्व, बल आरोग्य, सुख, प्रीतिवृद्धि, रसीले, स्निग्ध, स्थिर, हृदय के आनन्ददायक आहार सात्विक मनुष्य को प्रिय हैं। चरपरा, खट्टा, खारा, अत्युष्ण, तीखा, रूखा, दाहकारक और दुःख शोक रोग को पैदा करनेवाला आहार राजस

मनुष्य को प्रिय है। रखा हुआ, ठण्डा, नीरस, दुर्गन्धित, बासी, जूठा, अपवित्र भोजन तामस को प्रिय है। फल की इच्छा त्याग अपना कर्तव्य समझकर शान्त चित्त से विधिपूर्वक किया जानेवालायज्ञ सात्विक है। फल की इच्छा से या दम्भ से किया जानेवाला यज्ञ राजस है। विधिहीन, अन्नहीन, मन्त्रहीन, दक्षिणाहीन, बिना श्रद्धा से किया जानेवाला यज्ञ तामस है। देवता, ब्राह्मण, गुरु और तत्ववेत्ता का पूजन, शुद्धता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा ये शारीर (कायिक) तप हैं। उद्वेग न करने-

वाला, सत्य, प्रिय हितकारक, वेदाभ्यास ये वाचिक तप हैं। मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन, मनोनिग्रह, निष्कपटता ये मानसिक तप हैं। फल की इच्छा त्याग कर श्रद्धा और योगयुक्त बुद्धि से किये गये इन तीनों प्रकार के तपों को सात्विक कहते हैं। सत्कार, मान, पूजा के लिये अथवा दम्भपूर्वक जो तप किया वह अनिश्चित, क्षणिक फलवाला राजस तप है। अविवेकपूर्वक, स्वयं कष्ट उठाकर अथवा दूसरों को सताने के लिये जो तप किया वह तामस तप है। देश काल और पात्र का

विचारकर कर्तव्य बुद्धि से अनुपकारी को जो दान दिया गया वह सात्विक दान है। उपकार के बदले में वा फल की इच्छा रख बड़ी कठिनाई से जो दान दिया जाता है वह राजस दान है। अपवित्र स्थान में, अपवित्र समय में सत्कार रहित वा तिरस्कार के साथ अपात्र को जो दान दिया जाता है वह तामस दान है। ॐ, तत् और सत् ये तीन परमात्मा के निर्देश (वाचक) हैं। उसी निर्देश से प्रथम ब्रह्मा ने ब्राह्मण, वेद और यज्ञ को बनाया। इसलिये 'ॐ' शब्द का उच्चारण करके

वेदवादियों की शास्त्रोक्त यज्ञ, दान, तप और क्रियायें होती हैं। तत् शब्द का उच्चारण करके फल की आशा न रखकर मोक्षार्थी लोग यज्ञ, दान, तप आदि क्रियायें किया करते हैं। सद्भाव में, श्रेष्ठ भाव में और श्रेष्ठ कर्म में सत् शब्द का प्रयोग किया जाता है। यज्ञ, तप और दान में जो स्थिति है वह सत् शब्द से कही जाती है तथा उसके निमित्त जो कर्म किये जाते हैं वे भी सत् कहलाते हैं। हे पार्थ! बिना श्रद्धा से हवन, दान, तप और जो कुछ किया गया वह सब असत् है, उस कर्म

का फल न इस लोक में और न परलोक में ही होता है।

श्रीगीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद में प्रकृतिपुरुषविवेकयोग नामक १७ वाँ अध्याय समाप्त हुआ।



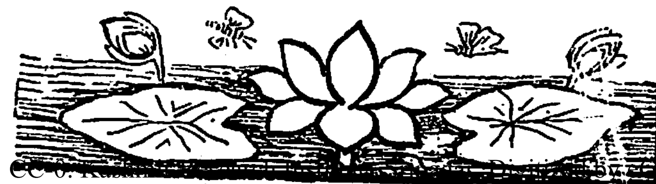
श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

सप्तदश अध्याय का माहात्म्य

श्रीशिवजी पार्वतीजी से और श्री विष्णु लक्ष्मीजी से बोले कि हे देवि! अब आप सत्रहवें अध्याय का माहात्म्य सुनिये। एक दिन राजा खड्गबाहु के पुत्र के दुःशासन नामक नौकर ने लोगों के मना करने पर भी एक पागल हाथी की सवारी की। हाथी ने क्रोध में आकर उस नौकर को सूँड़ में लपेटकर पैरों से कुचल डाला। दूसरे जन्म में वह नौकर हाथी हुआ। उसी हाथी को सिंहलद्वीप के राजा ने राजा

खड्गबाहु के पुत्र को भेंट में दिया। यहाँ आने से हाथी को पूर्वजन्म का स्मरण हो गया और चिन्ता के कारण बीमार पड़ा तथा वहुत दवा होने पर भी अच्छा न हुआ। इसी बीच में एक ब्राह्मण आया। उसने गीता के सत्रहवें अध्याय से अभिमन्त्रित जल का छींटा उस हाथी पर दिया। हाथी विमान पर सवार होकर स्वर्ग को गया। इस चरित्र को देख राजा ने चकित होकर ब्राह्मण से उद्धार का कारण पूछा। ब्राह्मण ने उद्धार में गीता का कारण कहा। उस दिन से राजा ने भी गीता के सत्रहवें अध्याय का पाठ आरम्भ कर दिया और अन्त में वैकुण्ठलोक को गया।

श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।





अध्याय सत्रह के सुनने से हाथी रूपी राजा की मुक्ति

श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

मोक्षसंन्यासयोग नामक अष्टादश अध्याय का कथा-प्रसंग

सत्रहवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने रजोगुण और तमोगुण को त्यागकर सात्विकी श्रद्धा का आश्रय ग्रहण करने-वाले को तत्वज्ञान में अधिकारी बतलाया। चतुर्थ अध्याय में कर्मों के फलमात्र का त्यागकर कर्मों का अनुष्ठान कहा और पाँचवें अध्याय में कर्मसंन्यास का उपदेश किया। यद्यपि कर्मसंन्यास और फलत्याग-पूर्वक कर्मानुष्ठान दोनों परस्पर अविरुद्ध हैं, परन्तु स्वयं

निर्णय करने में असमर्थ होकर अर्जुन उस अविरोध प्रकार को जानने की इच्छा से प्रश्न करते हैं।

अर्जुन बोले कि हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! हे महाबाहो ! मैं संन्यास और त्याग के तत्व को पृथक पृथक् जानना चाहता हूँ। श्रीकृष्ण बोले कि हे अर्जुन ! जितने काम्य कर्म हैं उनके न्यास (छोड़ने) को ज्ञानी लोग संन्यास कहते हैं और समस्त कर्मों के फलों के त्याग को पण्डित लोग त्याग कहते हैं। कुछ पण्डितों का कथन है कि कर्म दोषयुक्त है अतएव

उसका सर्वथा त्याग करना चाहिये तथा दूसरे लोग कहते हैं कि यज्ञ, दान, तप और कर्म को कभी न छोड़ना चाहिये। अतएव हे अर्जुन! त्याग के विषय में मेरा निर्णय सुनो। त्याग तीन प्रकार का कहा गया है। यज्ञ, दान, तप और कर्म का त्याग न करना चाहिये, इन कर्मों को करना ही उचित है। यज्ञ, दान और तप ये चितशुद्धिकारक हैं, इनको बिना आसक्ति के फलों का त्यागकर करे, यह मेरा मत श्रेष्ठ है। नित्य कर्मों का त्याग योग्य नहीं, उनका मोहवश त्याग करना

तामस त्याग कहलाता है। शरीर को कष्ट होने के भय से यदि कर्म को छोड़ दें तो उसका वह त्याग राजस हो जाता है और त्याग का फल उसे नहीं मिलता। कर्म करना हमारा कर्तव्य है ऐसा जानकर जो विहित कर्म आसक्ति और फल को छोड़कर किया जाता है, वह सात्विक त्याग माना गया है। जो सत्वशील, बुद्धिमान्, संशयरहित पुरुष दुःखद कर्मों से द्वेष नहीं करता और सुखप्रद कर्मों में आसक्ति नहीं रखता, वह सात्विक त्यागी है। देहधारी मनुष्य सम्पूर्ण कर्मों का

त्याग नहीं कर सकता, इसलिये कर्मों के फलमात्र के त्याग से त्यागी कहा जाता है। सुखात्मक दुःखात्मक और सुख-दुःखात्मक कर्मों का फल परलोक में सकामी पुरुषों को मिलता है किन्तु संन्यासी (त्यागी) को किसी काल में भी नहीं मिलता। सम्पूर्ण कर्मों की सिद्धि में पाँच कारण सांख्यसिद्धान्त में कहे गये हैं उनको मुझसे तुम जानो। अधिष्ठान (शरीर), कर्ता (अहङ्कार), पृथक् पृथक् करण (चक्षुरादि इन्द्रिय) पृथक् पृथक् चेष्टा (प्राण अपानादि व्यापार) और पाँचवाँ

कारण दैव (शुभाशुभ कर्मप्रेरक) कहा गया है। शरीर मन वचन से होनेवाले न्याय्य अथवा अन्याय्य कर्मों के पाँच कारण है। जो असंस्कृत बुद्धि के कारण केवल (निरुपाधि) परमात्मा को कर्ता मानता है वह दुर्बुद्धि यथार्थ नहीं देखता। जो अहंकार-रहित है, जिसकी बुद्धि अनिष्ट कर्मों में लिप्त नहीं होती है वह लोकदृष्टि से इन समस्त प्राणियों को मारता है परन्तु परमार्थ दृष्टि से नहीं मारता और उस पाप के बन्धन में भी नहीं पड़ता। ज्ञान (इष्ट साधन), ज्ञेय (इष्ट साधन

कर्म) और परिज्ञाता (ज्ञान ज्ञेय का आश्रय) ये तीन कर्म के प्रेरक हैं। तथा करण (साधक), कर्म (कर्ता का इष्ट) और कर्ता (क्रिया का करनेवाला) ये तीन क्रिया के आश्रय हैं। ज्ञान, कर्म और कर्ता ये गुणों के भेद से तीन प्रकार के होते हैं उनको तुम सुनो।

जिस ज्ञान के द्वारा भिन्न भिन्न सब भूतों में अभिन्न और अविनाशी परमात्मतत्व को समभाव से देखता है उस ज्ञान को सात्विक समझो। जिस ज्ञान के द्वारा सब प्राणियों में रहनेवाला एक तत्व भिन्न भिन्न दिखाई

देता है उसे राजस समझो। जिस ज्ञान के द्वारा एक प्रतिमा में ईश्वर का सम्पूर्ण रूप से रहना मान लिया जाता है जो कि ज्ञान निर्मूल, तुच्छ और परमार्थ-अवलम्बनसे रहितहै, उसे तामससमझो। जो कर्म शास्त्रविहित आसक्तिरहित, राग-द्वेष-शून्य, फलेच्छा से रहित है उसे सात्विक कर्म कहते हैं। जो कर्म फल की इच्छा से, अहंकार से और बहुत परिश्रम के साथ किया जाता है उसे राजस कर्म कहते हैं। जो कर्म अनुबन्ध (शुभाशुभ परिणाम), व्यय (धनखर्च), हिंसा और सामर्थ्य को न

विचारकर अज्ञान से किया जाता है उसे तामस कर्म कहते हैं। जो आसक्तिरहित, गर्व वचन से मुक्त, धैर्य उत्साह से युक्त, कर्म की सफलता वा निष्फलता में हर्ष-विषाद से रहित है वह सात्विक कर्ता है। जो स्नेहयुक्त, फल की इच्छा रखनेवाला, पर धन का इच्छुक, क्रूर प्रकृति, अपवित्र और लाभ हानि में हर्ष-विषाद से युक्त है वह राजस कर्ता है। असावधान, विवेकशून्य, उद्धत, शठ, दूसरों का अपमान करनेवाला, उद्यमशून्य, शोक-युक्त और दीर्घसत्री है वह तामस कर्ता है। बुद्धि और

धृति (धैर्य) के भी गुणों के अनुसार भिन्न भिन्न भेद होते हैं, उनको सुनो। जो प्रकृति, निवृत्ति कार्य, अकार्य, भय, अभय, बंध और मोक्ष को जानती है वह सात्विकी बुद्धि है। जिस बुद्धि के द्वारा धर्म, अधर्म, कार्य और अकार्य ठीक ठीक नहीं जाना जाता, वह राजसी बुद्धि है। जो अज्ञान से आच्छादित, अधर्म को धर्म समझने-वाली, सभी पदार्थों को विपरीत रूप से ग्रहण करनेवाली है, वह तामसी बुद्धि है। जिस एकाग्र और अव्यभि-चारिणी धृति से मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको



भगवान श्री कृष्ण का शस्त्र धारण करना अठारवां अध्याय

धारण किया जाता है वह सात्विकी धृति कही गई है। जिस धारणा से धर्म अर्थ काम का सेवन और समय पर फल की इच्छा करता है उस धारणा को राजसी धृति कहते हैं। जिस धारणा से स्वप्न, भय, शोक, विषाद और मद को नहीं छोड़ता उस धारणा को तामसी धृति कहते हैं। हे अर्जुन! अब तीन प्रकार के सुखों को भी सुनो। जिस सुख में मन प्रसन्न, दुःखों से रहित, प्रथम विष के समान और परिणाम में अमृत के समान तथा परमात्म-विषयक बुद्धि की प्रसन्नता से उत्पन्न जो सुख होता है, वह

श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस रोमाञ्चकारी अद्भुत संवाद को सुना है। श्रीवेदव्यासजी ने मुझे दिव्य दृष्टि प्रदान की। उन्हीं के प्रसाद से इस परम गोपनीय योग को मैंने श्रीकृष्ण के मुख से सुना है, जिसे सुनकर मुझे बारम्बार बहुत हर्ष हुआ। श्रीकृष्ण के विश्वरूप का स्मरण होने से पुनः पुनः चित्त में विस्मय और प्रसन्नता होती है। हे राजन्! जिन पाण्डवों के पक्ष में योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं और गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं वहाँ ही

का निग्रह) दम (बाह्येन्द्रिय का दमन), तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य (परलोक में निष्ठा) ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं। शौर्य (पराक्रम), तेज, धैर्य, कुशलता, युद्ध से अपलायन, दान और अपने में स्वामित्व भाव ये क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं। कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य, ये वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है। अपने अपने कर्म में तत्पर मनुष्य को सिद्धि

मिलती है, कैसे मिलती है उस उपाय को सुनो। जिसके द्वारा कार्य में प्रवृत्ति है, और यह समस्त विश्व व्याप्त है उस परमात्मा की स्वकर्मानुष्ठान द्वारा पूजा करने से सिद्धि (ज्ञान) मिलती है। दोषयुक्त भी अपना धर्म अच्छी तरह किया गया दूसरे के धर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है, क्योंकि अपने स्वभावानुसार कर्म को करने से पाप नहीं होता। दोषयुक्त भी अपने स्वाभाविक कर्म को नहीं छोड़े, क्योंकि सभी कर्म दोषों से आच्छादित हैं, जैसे धूम से अग्नि आच्छादित रहता है। आसक्ति

रहित, अहङ्कार रहित, फलेच्छा रहित पुरुष संन्यास (कर्मासक्ति और कर्मजन्यफलत्याग रूप) से सत्व-रूप सिद्धि को प्राप्त करता है। सिद्धि मिलने के बाद ब्रह्मप्राप्ति का भी उपाय सुनो, जो ज्ञान की परा निष्ठा है। जो सात्विक बुद्धि और धारणा से अपनी आत्मा (मन) को निश्चल कर, रूप रसादि विषयों का त्याग कर, रागद्वेष को छोड़ कर एकान्त और विशुद्ध स्थान में रहनेवाला, थोड़ा भोजन करनेवाला, वाणी, शरीर मन को वश में करनेवाला, निरन्तर ध्यान में

तत्पर रहनेवाला, वैराग्य का आश्रय करनेवाला, अहं-कार-बल-दर्प-काम-क्रोध-वस्तुसंग्रह इन सब को त्याग कर ममता रहित, शान्त चित्त होकर ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है। ब्रह्म में स्थित, प्रसन्नचित्त मनुष्य न किसी नष्ट वस्तु का सोच करता है और न अप्राप्त वस्तु की इच्छा करता है और जो सब प्राणियों में समदर्शी है वह मेरी परा भक्ति को पाता है। उस भक्ति के द्वारा मुझे ठीक ठीक जानता है कि मैं जैसा हूँ और जिस प्रभाववाला हूँ। बाद तत्त्वज्ञान उत्पन्न होने

पर मेरे में प्रविष्ट हो जाता है। नित्य नैमित्तिक कर्मों को करनेवाला, एकमात्र मेरा आश्रय करनेवाला योगी मेरे प्रसाद से अनादि अव्यय पद को प्राप्त होता है। मन से सब कर्मों को मेरे लिये समर्पण कर, मुझ-में परायण होकर, ज्ञानयोग का आश्रय लेकर निरन्तर मुझमें चित्त लगानेवाले बनो। मुझमें मन लगाने से सब दुःख दूर हो जायँगे। यदि अहंकारवश मेरे वचन न सुनोगे तो नष्ट हो जाओगे और युद्ध न करने का आग्रह भी मिथ्या है क्योंकि तुम्हारी प्रकृति

ही तुमको युद्ध में प्रवृत्त करावेगी, स्वाभाविक कर्मों से तुम बँधे हो इसलिये पराधीन होकर अवश्य युद्ध करोगे। हे अर्जुन ! सब प्राणियों के हृदय में ईश्वर का वास है वह सबको अपनी शक्ति से कर्मों में लगाता है, जैसे सूत्रधार काष्ठयन्त्र में आरूढ़ कृत्रिम भूतों को घुमाता है। सब जीव पराधीन हैं इसलिये उसके शरण में जाओ, उसकी कृपा से परम पद पाओगे। हे अर्जुन ! यह गुप्ततर गीता-शास्त्र मैंने तुमसे कहा। इसका ठीक ठीक विचार करो, बाद जैसी इच्छा हो वैसा करो अर्थात् इसका विचार

करनेसे तुम्हारा मोह दूर हो जायगा। अर्जुन ! फिर गुह्यतम मेरे दृढ़ वचन को सुनो क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो, तुम्हारे हित की बात कहूँगा। तुम मन को मुझमें लगाओ, मेरे भक्त बनो, मेरा पूजन करो और मुझको नमस्कार करो। ऐसा करने से तुम अवश्य मुझको प्राप्त होओगे। मैं सत्य कहता हूँ कि तुम मेरे प्रिय हो। तुम सब धर्मों को छोड़कर केवल मेरे शरण में हो जाओ। कर्मत्याग से पाप होगा इसकी चिन्ता मत करो। मैं तुम-को सब पापों से मुक्त कर दूँगा। हे अर्जुन ! जो स्वधर्मा-

नुष्ठानरहित, गुरु ईश्वर में भक्तिरहित, मेरी सेवा से रहित और मुझ परमेश्वर का निन्दक है उसे गीतार्थ तत्त्वज्ञान को कभी मत कहना। जो इसे मेरे भक्तों को सुनावेगा वह मेरी उत्तम भक्ति के द्वारा अवश्य मुझको ही प्राप्त होगा। जो इसकी व्याख्या करके सुनावेगा उससे बढ़कर मेरा प्रियकार्य करनेवाला दूसरा नहीं है। हे अर्जुन। जो इस हम दोनों के संवादरूप धर्मयुक्त गीता शास्त्र को जपरूप से पढ़ेगा उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा, यह मेरा कथन है। जो निर्दोष दृष्टि से श्रद्धा-

धारण किया जाता है वह सात्विकी धृति कही गई है। जिस धारणा से धर्म अर्थ काम का सेवन और समय पर फल की इच्छा करता है उस धारणा को राजसी धृति कहते हैं। जिस धारणा से स्वप्न, भय, शोक, विषाद और मद को नहीं छोड़ता उस धारणा को तामसी धृति कहते हैं। हे अर्जुन! अब तीन प्रकार के सुखों को भी सुनो। जिस सुख में मन प्रसन्न, दुःखों से रहित, प्रथम विष के समान और परिणाम में अमृत के समान तथा परमात्म-विषयक बुद्धि की प्रसन्नता से उत्पन्न जो सुख होता है, वह

श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस रोमाञ्चकारी अद्भुत संवाद को सुना है। श्रीवेदव्यासजी ने मुझे दिव्य दृष्टि प्रदान की। उन्हीं के प्रसाद से इस परम गोपनीय योग को मैंने श्रीकृष्ण के मुख से सुना है, जिसे सुनकर मुझे बारम्बार बहुत हर्ष हुआ। श्रीकृष्ण के विश्वरूप का स्मरण होने से पुनः पुनः चित्त में विस्मय और प्रसन्नता होती है। हे राजन्! जिन पाण्डवों के पक्ष में योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं और गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं वहाँ ही

राज्यलक्ष्मी, विजयलक्ष्मी, विभूती और निश्चित रूप से नीति है, ऐसा मेरा मत है।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद में मोक्षसंन्यासयोग नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



श्रीमद्भगवद्गीता-भाषा

अष्टादश अध्याय का माहात्म्य

श्री शिवजी पार्वतीजी से और श्री विष्णुजी लक्ष्मीजी से बोले कि हे देवि! अब इस अठारहवें अध्याय का माहात्म्य सुनिये। अमरावती में एक समय देवसभा के बीच दिव्य सिंहासन पर इन्द्र आकर बैठे थे। उसी समय विष्णुदूत के साथ हजार नेत्रधारी एक पुरुष आया। उसके तेज से परास्त होकर इन्द्र सिंहासन से गिर गये और

श्री विष्णु की आज्ञा से उस पुरुष को इन्द्रासन पर अभिषिक्त किया। उत्सव में नगाड़ा बजा, मङ्गल-गान हुआ, अप्सराओं का नृत्य हुआ। यह देख इन्द्र दुखी होकर विष्णु के पास गये और स्तुति करके अधिकार छिन जाने का कारण पूछा। विष्णु ने यज्ञ का फल अनित्य बताया और कहा कि तुमने अश्वमेध यज्ञ का फल भोग लिया। अब यह ब्राह्मण गीता के अठारहवें अध्याय का पाठ करनेवाला इन्द्रलोक का शासन करेगा। यदि सुख की इच्छा है तो तुम भी इस पवित्र धर्म का पालन करो। विष्णु के वचन को सुनकर इन्द्र ने गोदावरी नदी के तट पर जाकर एक वेदपारङ्गत ब्राह्मण से गीता की दीक्षा ली और अठारहवें अध्याय का पाठ कर इन्द्र पद से भी श्रेष्ठ वैकुण्ठलोक को गये। जो भी इस गीता का अभ्यास करेगा वह उत्तमोत्तम सुख भोगकर वैकुण्ठलोक को जावेगा।

श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय का माहात्म्य समाप्त हुआ।



अध्याय अठारह में गीता पाठी को स्वर्ग में श्रेष्ठपद की प्राप्ति

अथ सप्तश्लोकी गीता

भाषाटीकया सहिता

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥१॥

हे अर्जुन ! जो मनुष्य देह को त्यागने के समय ॐ इस एकाक्षर ब्रह्म का ध्यान करते हुए मेरा स्मरण करते हैं, वे अवश्य ही मोक्ष (परमपद) को पाते हैं ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत् प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च
सिद्धसङ्घाः ॥२॥

हे हृषिकेश ! आपके नाम को जपकर यह जगत हर्षित होता है और आप में

अनुराग करता है। राक्षस भयभीत होकर दसो दिशाओं में भागे फिरते हैं और सम्पूर्ण सिद्धों के समुदाय आपको नमस्कार करते हैं यह योग्य ही है ॥ २ ॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्यतिष्ठति ॥३॥

हे अर्जुन ! उस परब्रह्म के सब जगह हस्त और पाद हैं, उसके सब जगह नेत्र, शिर, मुख और कान हैं। वह सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो रहा है ॥ ३ ॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयां समनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ४ ॥

जो सर्वज्ञ, अनादि जगत् के नियन्ता, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, सबके पोषक, अचिन्त्य रूप, सूर्य के समान कान्तिमान् और तम से पर पुरुष है उसका स्मरण करते हैं ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥५॥

भगवान कहने लगे कि हे अर्जुन ! इस संसार में एक अविनाशी अश्वत्थ है, इसकी जड़ क्षर और अक्षर से भी ऊपर अर्थात् उत्तम पुरुष भगवान् हैं। इसकी शाखायें (हिरण्यगर्भ से लेकर कीट, पतंग आदि) नीचे की ओर फैली हैं। सम्पूर्ण वैदिक कर्मकाण्ड इसके पत्ते हैं, जो इस अश्वत्थ अर्थात् बार-बार नष्ट होकर फिर बन जाने से अविनाशी वृक्ष को जानता है, वह वेदार्थ ज्ञाता है ॥ ५ ॥

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तःस्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥६॥

मैं ही सम्पूर्ण जीवों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करता हूँ, मेरे ही

द्वारा पहिले किये हुए विषयों का स्मरण होता है, इन सबका अभाव भी मेरे ही द्वारा होता है, मैं ही सब वेदों से जानने योग्य हूँ और वेदान्त का कर्ता तथा वेदों को जाननेवाला भी मैं ही हूँ ॥ ६ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥७॥

हे अर्जुन ! तू मुझमें चित्त लगाकर मेरी भक्ति कर, मेरा पूजन कर और मुझको नमस्कार कर । यदि ऐसा करेगा तो अन्त में मुझमें आकर मिल जायगा । तू मेरा प्रिय है, इससे मैं सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ अर्थात् मैंने तुम्हें अनेक प्रकार से आत्मज्ञान का उपदेश किया है और धर्माधर्म में भ्रांति उत्पन्न करनेवाले जो अज्ञान हैं उन सबको तुम इस ज्ञान की सहायता से हटाकर दूर फेंक दो ॥ ७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्र श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सप्तश्लोकी गीता समाप्ता ॥

अथ चतुःश्लोकी भागवतम्

श्रीभगवानुवाच—

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥१॥

ब्रह्मा ने विष्णु भगवान् से कहा कि हे विष्णो ! मैं आपकी सृष्टिरूप सेवा करूँगा परन्तु मेरी एक प्रार्थना है कि मुझे 'मैं भी एक स्वतन्त्र सृष्टिकर्ता हूँ' ऐसा अभिमान वश मद न होवे। यह ब्रह्माजी की प्रार्थना सुनकर श्रीविष्णु भगवान् बोले कि अनुभव सहित परम गुह्य (गुप्त) जो मेरा शास्त्रजन्य ज्ञान है, मैं कहता हूँ तुमउसे रहस्य (भक्तियोग) के सहित और अङ्ग (साधन) सहित ग्रहण (धारण) करो ॥ १ ॥

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥२॥

यदि तुम कहो कि उस रूप के धारण करने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है तो मैं कहता हूँ —'मेरा जैसा स्वरूप है, जैसी मेरी सत्ता है और जैसा मेरा रूप, गुण, कर्म है, उन सभीविषयोंका वैसा ही यथार्थ ज्ञान मेरी कृपा से तुमको हो जाय' ॥२॥

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥३

इस प्रकार दो श्लोकों से आशीर्वादपूर्वक उपदेश की प्रतिज्ञा कर चार श्लोको से उपदेश करते हैं—सृष्टि के पूर्व परमकारणरूप वस्तु में ही था, स्थूल सूक्ष्मरूप कार्य और उसका कारण प्रधान आदि कुछ भी नहीं था, और यहाँ एव-पद से ध्वनित करते हैं कि मैंने सृष्टि के पूर्व रहकर कुछ भी नहीं किया, केवल मेरी सत्ता मात्र थी। सृष्टि के अनन्तर भी मैं ही हूँ और जो कुछ प्रपंच है तथा योग क्षेम का साधन है वह सब मैं ही हूँ। अन्त (प्रलय) में जो कुछ शेष रहेगा वह भी मैं ही हूँ। इससे मेरी सत्ता भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल व्यापिनी है, यह सिद्ध हुआ ॥ ३ ॥

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चाऽऽत्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः॥४॥

उस माया का निरूपण करते हैं, जिस माया के वशीभूत होकर प्राणी भ्रमग्रस्त हो जाता है—आत्मा (जीव) में वास्तव अर्थ के बिना भी जो प्रतीत होता है, और वास्तव अर्थ के होने पर भी जो प्रतीत नहीं होता उसको मेरी माया जानिये। अर्थात् कृशत्व, स्थूलत्व आदि देह के धर्म हैं, काणत्व आदि इन्द्रिय के धर्म हैं, क्षुधा, तृषा आदि प्राण के धर्म हैं और दुःखित्व सुखित्व आदि अन्तःकरण के धर्म हैं, न कि जीव के धर्म हैं परन्तु जीव जिसके कारण मैं कृश हूँ, काना हूँ, भूखा हूँ, दुखी हूँ ऐसा समझने लगता है। और सर्व प्रपंच ईश्वरमय होने पर भी सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा का ज्ञान नहीं होने पाता, अर्थात् ज्ञान होने न होने में जो निमित्तभूत है उसे मेरी माया जानिये। जैसे आभास (प्रतिबिम्ब) वास्तविक अर्थ के बिना भी प्रतीत होता है। अर्थात् माया मोह से अविद्यमान द्वित्व का भाव होना और विद्यमान

एकत्व का भान न होना प्रतीत होता है। विद्यमान के प्रतीक न होने में दृष्टान्त— जैसे ग्रहमण्डल में राहु के रहने पर भी राहु प्रतीत नहीं होता। इसलिए प्रतीत न होने पर भी उसकी सत्ता का होना सिद्ध है ॥ ४ ॥

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।

विष्णु मन्त्र

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥



गायत्री मन्त्र

ॐ भू र्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेणियम् भर्गोदिवस्य धीमहिः धियो योनः प्रचोदयात् ।

भावार्थ- — सर्व व्यापरक और सर्व प्रकाश परमेश्वर मन माँगे पदार्थ, सुख शाँति और पूर्ण आनन्द तथा मुक्ति की प्राप्ति के लिए हम सब पर कल्याणकारी होवे और चारों ओर से सुखों को पुष्टि करे

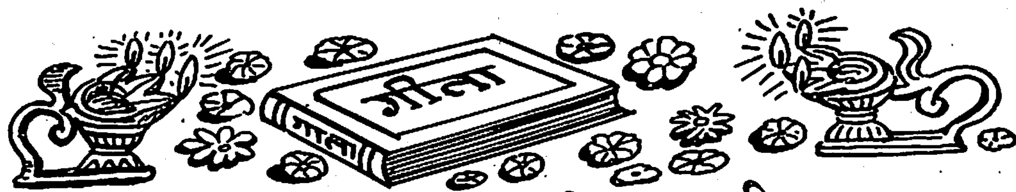
* अथ श्री गर्भ गीता*

श्री कृष्ण भगवान् का वचन है जो प्राणी इस गर्भ गीता का विचार करता है सो पुरुष फिर गर्भ जून में न आवेगा। अर्जुनोवाच– भगवान् यह प्राणी गर्भ विषे किस दोष कर आता है हे प्रभु जी! जिनके करने से जन्मदाता है तब इसको जरा आदि रोग लगते हैं फिर मृत्यु होती है। हे स्वामी, वह कौन कर्म है जिनके करने से जन्म मरण से रहित होवे। श्री भगवानोवाच— हे अर्जुन! यह जो मनुष्य है सो अन्धा मूर्ख है और संसार की प्रकृति के साथ प्रीति करता है और यह चिन्ता रहती है कि यह मैं पाऊँगा यह चिन्ता इस प्राणी के मन से उतरती नहीं, आठ पहर माया को ही माँगता हैं इन बातों को करके बार-बार जन्मता

और मरता रहता है। गर्भ विषे दुःख पाता है। अर्जुनोवाच— हे श्री कृष्ण जी! मनमस्त हाथी न्याई। तृष्णा इसकी शक्ति है, मन पाँचों के बस है काम, क्रोध, लोभ मोह, अहंकार और पांचों अहंकार बहुत बली हैं। कौन यत्न जिस से मन वश होय। श्री भगवानोवाच— हे अर्जुन! यह मन निश्चय ही साथी की भाँति कहते हैं तिन विषे को जानिये। कि वैष्णव कौन है श्री भगवानोवाच हे अर्जुन! एक मेरे नाम के लिए वनों मे फिरते हैं। एक संन्यासी कहलाते हैं एक सिर पर जटा बाँधते हैं। एक भस्म लगाते है तिन मे मैं नहीं हूं क्योंकि तिन्हीं विषे अहंकार है इनको मेरा दर्शन दुर्लभ है। अर्जुनोवाच— हे श्री कृष्ण भगवान जो यह कौन पाप है जिसे करके स्त्री मर जाती है जिसे करके पुत्र मर जाता और नपुन्सकता कौन पाप से होती है। श्री भगवानोवाच-हे अर्जुन! जो किसी से करजा उठाता है, देता नहीं इस पाप से स्त्री मर जाती है और जो किसी की अमानत रखी हुई पचा लेता है उसके पुत्र मर जाते है। जो किसी का कार्य सबसे पहिले करूंगा न्याई है, तृष्णा इसकी शक्ति है। यह मन पांचों के वश है अहंकार इनमें श्रेष्ठ है। हे अर्जुन जैसे हाथी कुण्डे के वश होता है मे सो मनरूपी हाथी के वश करने को ज्ञान रूपी कुण्डा है अहंकार करने से वह जीव नरक मे पड़ता है अर्जुनोवाच— हे कृष्ण भगवानजी! एक तुम्हारे नाम के लिए वनों मे फिरते हैं, एक धर्मपर जब समय आ पड़े तब तिसका कार्य नहीं करे इस पाप से नपुन्सकता होती है। अर्जुनोवाच— श्री भगवानजी! कौन पाप से मनुष्य सदैव रोगी रहता है, गधे का जन्म पाता है, स्त्री का जन्म, टट्टू का जन्म कैसे पाता है, बिल्ली का जन्म किस पाप से होता है? भगवानोवाच— हे अर्जुन जो मनुष्य कन्या को बेचते है और साधु ब्राह्मणों के दोषी हैं सो सदा रोगी रहते हैं और जो विषय विकार के वास्ते मदिरा पान करते हैं सो टट्टू का जन्म पाते हैं और जो झूठी गवाही भरते हैं सो स्त्री का जन्म पाते हैं जो रसोई बनाकर पहिले खा लेते हैं और पीछे परमेश्वर अर्घदान करते हैं सो बिल्ली का जन्म पाते है और जो मनुष्य अपनी जूठी वस्तु दान करते हैं वह दासी का जन्म पाते हैं, अर्जुनोवाच— हे श्री कृष्ण भगवान जी जो एक मनुष्य को स्वर्ण दिया है, कई मनुष्यों को आपने हाथी घोड़े दिये है कौन पुण्य किया

है ? श्री भगवानोवाच— हे अर्जुन, जिन्होंनि स्वर्णदान किया है सो तिनको हाथी घोड़े वाहन मिलते है। जो कन्यादान परमेश्वर निमित्त करते हैं तो मनुष्यों का जन्म पाते हैं। अर्जुनोवाच— हे भगवान जी एक की सुन्दर विचित्र देह है एक के घर सम्पत्ति है एक विद्वान है, किसने कौन पुण्य किया है श्री भगवानोवाच-हे अर्जुन जिसने अन्न दान किया, तिनका स्वरूप सुन्दर है जिसने विद्या दान की है सो विद्वान होते हैं। जिन्होंनि गुरुदेव की सेवा की सो पुत्रवान होते हैं। अर्जुनोवाच— हे भगवान,इकनाकी धर्म में प्रीति होती है एक स्त्रियों से प्रीति करते हैं तिसका क्या कारण है ? भगवानोवाच— हे अर्जुन,राजपाट, धन, स्त्री सब नाश रूप हैं । भक्ति नाश नहीं है। अर्जुनोवाच— हे भगवानजी,राजपाट और विद्या किस धर्म से मिलती है ? भगवानोवाच— हे अर्जुन! जो प्राणी श्री काशी जी में निष्काम भक्ति देह को त्यागते हैं सो राजा होते हैं। जो गुरु की सेवा करते हैं सो विद्वान होते हैं। अर्जुनोवाच— हे भगवान जी, इकना को धन संचित मिलता है एक सारी उमर रोग से रति हैं, सो कौन पुण्य है ? भगवानोवाच— हे अर्जुन! जिसने परमेश्वर अर्थ पराया काम संवारा है वे रोग से रहित होते हैं अर्जुनोवाच— हे श्री कृष्ण भगवान,कौन पाप से अमली होते हैं ? भगवानोवाच— हे अर्जुन! जो अपने कुल की स्त्री गमन करते सो अमली होते हैं। जो गुरु से विद्या पढ़कर मुकर जाते हैं,सो गूंगे होते हैं। जिसने गौ घात करी सो कुष्ठ होते हैं। अर्जुनोवाच— हे श्री कृष्ण भगवान् जी,इकना की देह में विकार होता है। एक दरिद्र होते हैं कोई नर खरडवाहु होते हैं। एक अन्धे होते हैं। पिंगल होते हैं, यह कौन पाप से होते हैं। एक बाल विधवा होती है कौन पाप से होती है ? श्री भगवानोवाच— हे अर्जुन, जो सदा क्रोधवान रहते हैं तिनको रक्तविकार होता है जो प्राणी पर स्त्री को नंगी देखता है और स्त्री पर कुदृष्टि करता है सो नर अन्धा होता है। जिसने गौ ब्राह्मण को लात मारी है सो लंगड़ा पिंगल होता है जो स्त्री अपने पति को छोड़कर पराये से संग करती है तो बालविधवा होती है। अर्जुनोवाच— हे भगवानजी,तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारे को नमस्कार है आगे मैं तुम्हें सम्बन्धी कर जानता था। अब मैं आपको साक्षात परमेश्वर जानता हूँ हे पारब्राह्मण जी,गुरुदीक्षा कैसी

होती है सो कृपा कर कहो। श्री कृष्णोवाच— हे अर्जुन,तू धन्य है तेरे माता-पिता भी हैं जिन का तू ऐसा पुत्र है जिसने गुरुदीक्षा पूछी है। सारे संसार के जगन्नाथ जी हैं विद्या के गुरुजी काशी है चारों वर्णों का गुरु ब्राह्मण, ब्राह्मण का संन्यासी है। संयासी उस को कहते हैं जिस ने सब कुछ त्याग करके मेरे विषय में मन लगाया है, संन्यासी जगत गुरु है। हे अर्जुन,बात ध्यान देकर सुनने की है। जिसने इन्द्रियां जीती हैं जिस को संसार रूप नजर आता हैं, जगत से उदास हैं गुरु को परमेश्वर को जानने वाला होवे। तिस गुरु की पूजा सब तरह से करे। हे अर्जुन जो गुरु भक्त होते है सो मेरा भक्त होता है। जो प्राणी गुरु के सम्मुख होकर मेरा भजन करना सफल है जो गुरु के विमुख है तिनको सप्य ग्राम जलाने का पाप है। गुरु विमुख का दर्शन चांडाल के तुल्य है। जो गृहस्थी गुरु के बिना है सो चांडाल के समान हैं जिस तरह मन्दिर के बर्तन होवे उस विषे गंगाजल पाइयों से अपवित्र होता है उसी तरह गुरु विमुखी का भजन सदा अपवित्र है तिस के हाथ का दिया देवता भी नहीं लेते तिस के सब कर्म निष्फल हैं। कूकर, शूकर, गधा, काक, इन सब योनियों में सर्प खोटी जून है। इन सब से पहले मनुष्य खोटा है जो गुरु नहीं धारता गुरु बिना गति नहीं अवश्य नरक को जायगा गुरु दीक्षा के बिना प्राणी के सब कर्म निष्फल हैं। हे अर्जुन,चार वर्णों को मेरी भक्ति और सेवा करना योग्य है जैसे सब नदियों में गंगा जी श्रेष्ठ हैं सब व्रतों मे एकादशी श्रेष्ठ है ऐसे ही हे अर्ज़ुन,शुभ कर्मों मे गुरु सेवा उत्तम है गुरु दीक्षा बिना प्राणी पशु योनी में फल भोगता है चौरासी में घूमता रहता है। अर्जुनोवाच—हे कृष्ण भगवान जी! गुरु दीक्षा क्या वस्तु है? श्री भगवानोवाच— हे श्री अर्जुन, जो गुरु की सेवा करता है उसपर प्रसन्नता है वह चौरासी से छूट जावेगा। जन्म मरण से रहित हो स्वर्ग भोगेगा जो प्राणी गुरु की सेवा नहीं करते,तो साढ़े तीन वर्ष नरक भोगता है जो गुरु की सेवा करता है उसको कई अश्वमेघ यज्ञ किए का फल होता है गुरु की सेवा ही मेरी सेवा है। हे अर्जुन! इति-मेरे संवाद को जो प्राणी पढ़े व सुने, सो गर्भ दुःख से छूटेंगे, चौरसी कट जावेगी। इसी करके इस पाठ का नाम गर्भ गीता है। श्री कृष्ण महाराज जी के मुख से अर्जुन ने श्रवण कर गुरु दीक्षा लेना उत्तम धर्म है जिसका फल नर्क और चौरासी से जीव बचा रहता है भगवान प्रसन्न होते हैं।



श्री गीताजी की आरती

टेक जय गीता माता मैया जय गीता माता । सुख करनी दु :ख हरनी तुमको जग गाता ।।
अज्ञान मोह ममता का क्षण में नाश करे । सत्य ज्ञान का मन में तू प्रकाश करे ।।
शरण तेरी जो आवे तेरी मति ग्रहण करे । पाप ताप मिट जावें निभर्य भव सिन्धु तरे ।।
रणक्षेत्र में अर्जुन जब शोकाधीर हुआ । कर्त्तव्य कर्म तब बैठा बहुत मलीन हुआ ।।
तब कृष्णचन्द्रके मुखसे तुमने अवतार लिया । तत्व बात समझा कर उसका उद्धार किया ।।
शरीर जन्मते मरते आत्मा अविनाशी । शरीर के दु :ख व्यापे आत्मा सुख राशी ।।
अत : शरीर की ममता मन से त्याग करो । आत्मा ब्रह्मा को चीन्हों उससे अनुराग करो ।।
निष्काम कर्म नित्य करके जगका उपकार करो । फल वाँछित को त्यागे सद् व्यवहार करो ।।
मन को वश में करके इच्छा त्याग करो । निष्काम जगत में रह कर हरि से अनुराग करो ।।
यह उपदेश जो तेरे नर मन में लावे । भगवान भवसागर से वह क्यों न तर जावे ।।

।।श्री गणेशाय नमः।।

अथ आरती संग्रह



।।आरती जय जगदीश हरे की ।।

ओ ३म जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे,
भक्त जनों के संकट क्षण में दूर करे।
जो ध्यावे फल पावे दु:ख विनशे मनका,
सुख सम्पति घर आवे कष्ट मिटे तनका। ओ३म। १
मात पिता तुम मेरे, शरण गहूं किसकी,
तुम बिन और न दूजा आस करूं जिसकी। ओ३म। २
तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तर्यामी,
पारब्रह्म परमेश्वर तुम सबके स्वामी। ओ ३म। ३
तुम करूणा के सागर तुम पालन कर्ता,
मैं मूरख खल कामी कृपा करो भर्ता। ओ ३म। ४
तुम हो एक अगोचर सबके प्राण पति,





किस विधि मिलूं दयामय तुमको मैं कुमति । ओ ३म । ५
दीनबन्धु दु:ख हर्ता तुम ठाकुर मेरे,
अपने हाथ उठाओ द्वार पड़ा तेरे । ओ ३म । ६
विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा,
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ सन्तन की सेवा । ओ ३म । ७

आरती उमा महेश की

झांकी उमा महेश की आठों पहर किया करूं,
नैनों के पात्र में सुधा भर २ के मैं पिया करूं ।
वाराणसी का वास हो और कोई न पास हो,
गिरजापति के नाम का सुमिरन भजन किया करूं ।
जयतिजय उमेश हे जयति नन्दी केशवे,
जयतिजय उमेश हे प्रेम से मैं जपा करूं ।
अम्बा कहीं श्रमिक न हो सेवा का भार मुझको दो,
जी भर के तुम पिया करो घोट के मैं दिया करूँ ।
जी में तुम्हारी है लगन खेंचते हैं उधर व्यसन,





हरदम चलायमान मन इसका उपाय क्या करूँ ।
भिक्षा हे नाथ दीजिए अपनी शरण में लीजिए,
ऐसा प्रबन्ध कीजिए सेवा में नित रहा करूँ ।
तुम तो जगत के नाथ हो सब पै दया का हाथ हो,
मैं निराश हो प्रभु द्वार से क्यों फिरा करूँ,
बेकल हूं नाथ रात दिन चैन नहीं त्रिपुरारि बिन,
दास तो सब्र कर भी ले, दिल का इलाज क्या करूं ।



आरती श्री कृष्ण जी की

आरती युगल किशोर की कीजै । राधे धन न्यौछावर कीजै ।।टेक।। रवि शशि कोटि बदन की शोभा, ताहि निरख मेरा मन लोभा ।।१ ।।घोर श्याम मन निरखत रीझे प्रभु को स्वरूप नयन भर पीजै ।।२ ।। कंचन थार कपूर की बाती हरि आये निर्मल भई छाती ।।३ ।। फूलन की सेज फूलन की माला, रत्न सिंहासन बैठे नन्द लाला ।।४ ।। मोर मुकुट कर मुरली सोहै, नटवर वेश देख मन मोहै ।।५ ।। आधा नील पीत पट सारी कुंज बिहारी गिरवरधारी ।।६ ।।



श्री पुरुषोत्तम गिरवरधारी आरती करत सकल ब्रजनारी ।।७।। नन्दलाला वृषभानु किशोर, परमानन्द स्वामी अविचल जोरी । आरती युगल किशोर की कीजै ।।



द्रोपदी विनय

बिन काज आज महाराज लाज गई मेरी । दुख हरौ द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ।। टेक ।। दु:शासन वंश कठोर महा दुखदाई । कर पकड़त मेरो चीर लाज नहिं आई । अब भयो धर्म कौ नाश पाप रह्यौ छाई । लख अधम सभा की ओर नारि बिलखाई ।। शकुनि दुर्योधन कर्ण खड़े दल घेरी । दुख हरौ द्वारिका नाथ शरण मैं तेरी ।। तुम सन्तन को सुख देती देवकीनन्दन । है महिमा अगम अपार भक्त उर चन्दन ।। तुम कियो सिया दु:ख दूर शंभु धनु खंडन । ए तारण मदन गोपाल मुनिन मन जन ।। तुम सुन गयंद की टेर विश्व अविनाशी । ग्राह मारि छुटाई वन्दि पग फाँसी । मैं धरौ तुम्हारौ ध्यान हे द्वारिकावासी । अब काहे राज समाज करावत हाँसी । अब कृपा करो हे नाथ जान चितचेरी । दुख हरौ द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ।। तुम पति राखी प्रहलाद दीन दुख टारयौ । भये खंभ फाड़ि नरसिंह असुर संहारयो । ब्रज खेलत केशी आदि बकासुर फारयो ।

मथुरा मुष्टिक चाणूर कंसा को मारयो ।। तुम पिता मातु की जाय कटाई बेड़ी । दुख हरौ द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ।। भक्तन हित ले अवतार कन्हाई तुमने । नल कूबर की जड़ योनि छुड़ाई तुमने ।। जल बरसत प्रभुता अगम दिखाई तुमने । नख पर धर गिरिवर ब्रज लिया बचाई तुमने ।। प्रभु अब बिलम्ब क्यों करो हमारी बेरी । दुख हरौ द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ।। बैठे जहँ राज समाज नीति सब खोई । नहीं कहत धर्म की बात सभा में कोई ।। पांचों पति बैठे मौन कौन गति होई । लै नन्द नन्दन को नाम द्रौपदी रोई । कर कर बारम्बार विलाप सभा में टेरी । दुख हरौ द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ।। सुन दीनबन्धु भगवान भक्त हितकारी । हरि भये चीर में आय हरयो दुख भारी ।। खेंचत हारौ मतिमन्द वीर बलधारी । रख लई दीन की लाज आप बनवारी । हर्षत बरसत सुमन सुरन बजावत भेरी । दुख हरौ द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ।। क्या करी द्वारिकानाथ मनोहर माया । ह्वै विकल द्रौपदी तबै कृष्ण गुण गाया । दीनन के दीनानाथ विपति निरवेरी । दुख हरौ द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ।।

श्री कमल नेत्र स्तोत्र

श्री कमलनेत्र कटि पीताम्बर अधर मुरली गिरिधरम् । मुकुट कुण्डल लकुटिया साँवरे राधेवरम् । कूल जमुना धेनु आगे सकल गोपी मन हरम् । पीत वस्त्र गरुड़ वाहन

चरण सुख नित सागरम् ।। करत केलि किलोल, निशदिन, कुंजभवन उजागरम् । अति अमल अडोल निश्चल पुरुषोत्तम अपरापरम् ।। दीनानाथ दयालु, गिरिधर कंस हिरणाकुश हरम् । गलफूल माल विशाल लोचन अधिक सुन्दर केशवम् ।। वंशीधर वसुदेव छय्या छलिया हरि श्रीवामनम् । जल डूबते गज राख लीनी लंक छेद्यो रावनम् ।। सप्तदीप नवखण्ड चौदह भुवन कीनों प्रभु एक पलम् । द्रौपदी की लाज राखी कहाँ लौं उपमा करम् ।। दीनानाथ दयालु पूरन करुणामय करुणाकरम् ।। कविदत्तदास विलाश निशिदिन नाम जपति निति नागरम् ।। प्रथम गुरुजी के चरण वन्दौं यस्य ज्ञान प्रकाशितम् । आदि विष्णु जुगादि ब्रह्मा सेवते शिव शंकरम् ।। श्रीकृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण यदुपति केशवम् । श्रीरामरघुवर राम रघुवर रामरघुवर राघवम् ।। श्रीराम कृष्ण गोविंद माधव वासुदेव श्रीवामनम् । मच्छ कच्छ वाराह पाहि रघुपति पावनम् ।। मथुरा में केशवराय विराजे गोकुल बाल-मुकन्दजी । श्रीवृन्दावन में मदनमोहन गोपीनाथ गोविन्द जी । धन्य मथुरा धन्य गोकुल जहां श्रीपति अवतरे । धनुय यमुनानीर निरमल ग्वाल बाल सखावरे ।। नवनीत नागर करत निरतत शिव विरंचि मन मोहितम् । कालिन्दी तट करत क्रीड़ा बाल अद्भुत सुन्दरम् ।। ग्वाल बाल सब सखा विराजे संग राधे राजहीं । वंशीवट तट निकट यमुना

मुरली की टेर सुंहावहीं ।। भज राधे यदुवंश उत्तम परम राजकुमारीजी । सीता के पति भगनिके गति जगत्प्राण अधारजी ।। जनक राजा परन राखो-धनुष वाण चढ़ावहीं । सती सीता नाम जाके श्रीरामचन्द्र प्रणामहीं ।। जन्म मथुरा खेल गोकुल नन्द के हरि नन्दनम् । बाल लीला पतित पावन देवकी वसुदेवकम् । श्रीकृष्ण कलिमल हरका जाके जो भजे हरि चरण को । भगति अपनी देहु माधव भवसागर के तरण को । जगन्नाथ जगदीश स्वामी श्रीबद्रीनाथ विश्वम्भरम् । द्वारिका के नाथ स्वामी श्रीपति केशव प्रणमाम्यहम् ।। श्रीकृष्ण अष्टपदी पढ़त निशदिन विष्णुलोक च गच्छतम् । श्री गुरु रामानन्द स्वामी कवि दत्तदास सुभाषतम् ।।

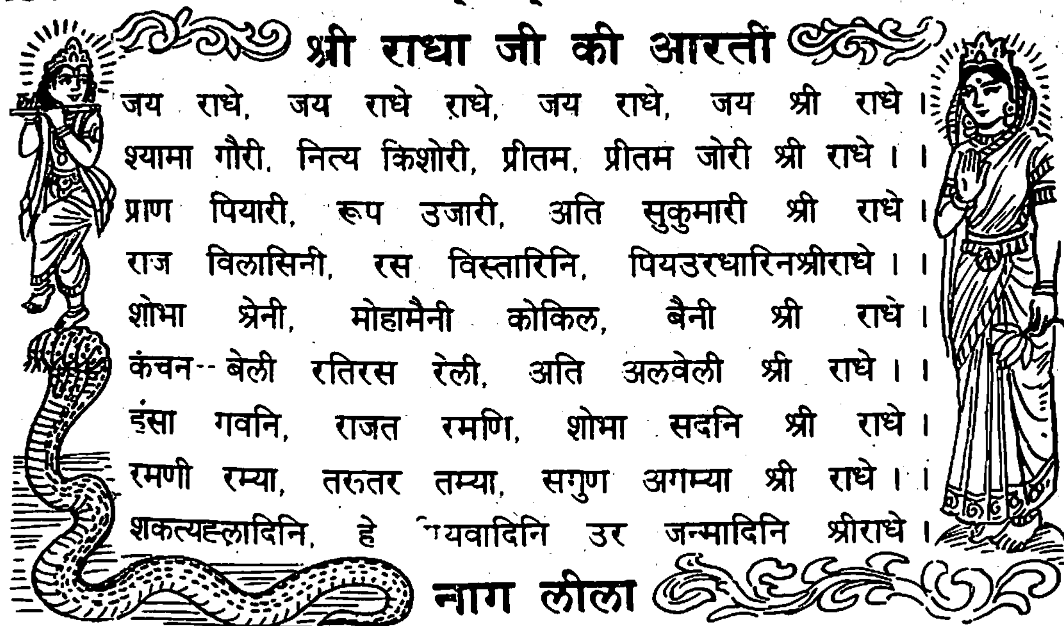




श्री एक श्लोकी भागवत



आदौ देवकी देव गर्भ जननं गोपी गृहे वर्धनम् ।
माया पूतना जीव ताप हरणं श्रीगोवर्द्धनोद्धारणम् ।।
कंसच्छेदन कौरवादि हननम् कुन्ती सुतां पालनम् ।
एतद् श्रीमद्भागवत पुराण कथितं श्रीकृष्णलीलामृतम् ।।



श्री राधा जी की आरती

जय राधे, जय राधे राधे, जय राधे, जय श्री राधे ।
श्यामा गौरी, नित्य किशोरी, प्रीतम, प्रीतम जोरी श्री राधे । ।
प्राण पियारी, रूप उजारी, अति सुकुमारी श्री राधे ।
राज विलासिनी, रस विस्तारिनि, पियउरधारिनश्रीराधे । ।
शोभा श्रेनी, मोहामैनी कोकिल, बैनी श्री राधे ।
कंचन-- बेली रतिरस रेली, अति अलवेली श्री राधे । ।
हंसा गवनि, राजत रमणि, शोभा सदनि श्री राधे ।
रमणी रम्या, तरुतर तम्या, सगुण अगम्या श्री राधे । ।
शकत्यहलादिनि, हे [illegible]यवादिनि उर जन्मादिनि श्रीराधे ।

नाग लीला

श्री कूल यमुना धेनु आगे; जल में बैठे प्रभु जी आन के । नाग नागिनी दोनों बैठे, श्री कृष्ण जी पहुँचे आन के । नागिनी कहती सुनो रे बालक, जाओ यहां से भाग के । तेरी सूरत देख मन में दया उपजी, नाग मारेगा जाग के । किसका बालक पुत्र कहिए

कौन तुम्हारो ग्राम है। किसके घर तू जन्मियारे बालक क्या तुम्हारो नाम है। वसुदेवजी का पुत्र कहिये गोकुल हमारो ग्राम है श्रीमाता देवकी जन्मियारे मैंनूँ श्रीकृष्ण हमारो नाम है। लै रे बालक हत्या दे कंगन कन्नांदे कुण्डल सवा लाख की बोरियाँ। इतना द्रव्य लैजा रे बालक दिया नागां कोलों चोरियां। क्या करां तेरे हत्थां दे कंगन, कानों के कुण्डल सवा लाख की बोरियां। श्री माता यशोदा दही बिलोवे, पावां तेरे नागकाले दिया डोरियां। क्योंरे बालक बैद ब्राह्मण क्या मरियां तूतां चाहनां ऐ। नाग दल में आन पहुँचया, अब कैसे घर जावना ऐं। नारे पदमनी बैद ब्राह्मण, नन्दजी का मैं बालका। श्रीमात यशोदा दही बिलोवे, तेतरा माँगे काले नाग का। जब कर चूमें भुजामरोड़ी, नागिनी नाग जगाया। उठोरे उठो बलवंत योद्धा बालक नथने को आया। उठियोरे उठियो मण्डली का राजा इन्दरवांग गरजिया। बांके मुकुट पर झपट कीनी श्रीकृष्णजी मुकुट बचाया। भुजा पकड़ स्वामी खींच लिये, जीभ का बल प्रभू जी हरण किया। हाथ जोड़ नागनियाँ कहतीं, हुण बल पिया का कहां गया। बंसरी सेती काली नाग नथिया फन-फन नृत्य कराया। फल फूली मथुरा की नगरी, देवकी मंगल गांया। भगत हेतु प्रभु जन्म लेकर लंका में रावण मारिया। काली प्रहलाद नाग नथिया मथुरा में कंस पछारिया। सप्तदीप नौ खंड भुवन चौदह सब तेरा है पसारिया। सूरदास प्रभु

जी तेरो यश गावें, तेरे चरणां तो बलिहारिया ।

आरती श्री गंगाजीकी

ॐ जय गंगे माता श्री जय गंगे माता । जो नर तुमको ध्याता मन वांछित फल पाता । ॐ जय गंगे माता । १ । चन्द्रजी ज्योति तुम्हारी जल निर्मल आता । शरण पड़े जो तेरी सो नर तर जाता । ॐ जय गंगे माता । २ । पुत्र सगर के तारे सब जग की ज्ञाता । कृपा दृष्टि तुम्हारी त्रिभुवन सुखदाता । ॐ जय गंगे माता । ३ । एक बार जो तेरी शरणागत आता । यम की त्रास मिटाकर परमगति पाता । ॐ जय गंगे माता । ४ । आरती मात तुम्हारी जो जन नित गाता । निस्संदेह वही सहज में मुक्ति को पाता । ॐ जय० ।

आरती श्री दुर्गाजी की

जय अम्बे गौरी मैया जय अम्बेगौरी । मंगल मूर्ति मैया जय आनन्द करणी । तुमको निशदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिवरी । टेक । माँग सिंदूर विराजत टीकौ मृगमद कौ । उज्ज्वल से दोऊ नैना चन्द्र बदन नीको । जय० । कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजे । रक्त पुष्प गल माला कण्ठन पर साजे । जय० । केहरि वाहन राजत खड्ग

खप्परधारी । सुर नर मुनि जन सेवत तिनकी दुखहारी । जय० । कानन कुण्डल शोभित नासाग्रे मोती । कौटिक चन्द्र दिवाकर राजत सम ज्योति । शुम्भ निशुम्भ विदारे महिषासुर घाती । धूम्र विलोचन नैना निशिदिन मद माती । जय अम्बे० । चौंसठ जोगिन मंगलगावत नृत्य करत भैंरू । बाजत तालमृदंग अरु बाजत है डमरूँ । जय० । भुजाचारि अति शोभित खड़्ग खप्पर धारी । मनवाँछित फल पावत सेवत नरनारी, जय अम्बे । कंचन थाल विराजत अगर कपूर बाती । श्रीमालकेतु में राजत कोटि रत्न ज्योति । जय अम्बे० । यह अम्बे की आरती जो कोई गावै । भनत शिवानन्द स्वामी सुख सम्पति पावै । जय अम्बै गौरी, मैया जय अम्बै गौरी ।

आरती श्रीरामायणजी की

आरती श्रीरामायण जी की, कीतर कलित ललित सिय पी की । गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद । वाल्मीकि विज्ञान विशारद । सुक सनकादि शेष अरु शारद । बरनि पवनसुत कीरत नीकी । गावत वेद पुरान अष्ट दश छहों शास्त्र सब ग्रन्थन को रस । मुनि जनमन ग्रन्थन को सर्वस, सार अंस संमत सब ही की । गावत सन्तत शंभु भवानी, अरु घट सम्भव मुनि विज्ञानी । व्यास आदि कवि बर्ज बखानी, [illegible]ड

गरूड़ के हिय की। कलिमल हरनि विषय रस फीकी, सुभग सिंगार मुक्ति जुवती की। दलन रोग भव भूरि अमी की। तात मत सब विधि तुलसी की।

आरती श्री पार्वती जी की

जय पार्वती माता जय पार्वती माता। ब्रह्म सनातन देवी शुभ फल की दाता। अरिकुल पद्म विनासिनि निज सेवक त्राता। जग जीवन जगदम्बा हरिहर गुण गाता। जय०। सिंह को वाहन साजै कुण्डल है साथा। देव वध जहाँ गावत नृत्य करत ताथा। जय०। सतयुग रूप शील अति सुन्दर नाम सती कहलाता। हिमाचल घर जन्मी सखियन संग राता। शुम्भ निशुम्भ विदारे हिमाचल स्थिता। सहस्त्र भुजा तन धरके चक्र लिया हाथा। जय०। सृष्टिरूप तुम्हीं हो जननी शिव संग रंगराता। नन्दी भृंगी बीन लही है हाथन मदमाता। जय०। शुभ गुण सुन्दर युक्ति क्षीर जो जाता। रैन चतुर्दश ताको नहीं पाता। जय०। यह आरती पार्वती जी की जो कोई गाता उर आनन्द अति उमड़े पाप उतर जाता। जय०। मन स्थिर कर जगत बचावे कर्म प्रख्याता। राम प्रताप मैया की शुभ दृष्टि चाहता। जय०। पार्वती माता, जय पार्वती निशदि ध्यावत हर विष्णु विधाता। जय०। पार्वती माता जय पार्वती माता।।

आरती श्री लक्ष्मीजी की

जयं लक्ष्मी माता जय लक्ष्मी माता। आदि शक्ति कहि तुमको, सुरगण है ध्याता। जय कभलाल वालिनी हरि प्रिये कमले। कारी गिरा समेते जय लक्ष्मी विमले।। इन्द्राणी ब्रह्माणी तुम ही। सकल लोक की माता पालन हेतु मही।। जिस घर वास तुम्हारा उसका क्या कहना। रम्य भवन हैं उनके होवे अति गहना।। महानिशा में घर-घर पूजा हो तेरी। जय कमले हरि भामिनी अब सुधि ले मेरी।। निज पति पुत्र समेता वसियो मम घर में। यही प्रार्थना मेरी स्वाकारो उर में।। पूत कपूत भलेहि हो लेकिन नहीं माता। यही सोच अब मुझ पर करुणा कर माता। नहीं पाठ पूजा मैं जानूं महतारी। केवल चरणों का ही हूँ आश्रयकारी।।भक्ति भाव का अम्बे ज्ञान नहीं मुझको। 'धरणीधर' की अम्बे लज्जा है तुझको।

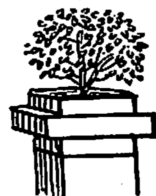
श्री कृष्णाजी की मंगला आरती

जागिए ब्रज कुमार, जागिए कन्हाई। ग्वाल बाल मण्डली है, दर्शनार्थ आई। टेर। बीत गई रात अब, हुआ है प्रभात अब, पूरब सुहाति अति, पीत, कांति छाई। १। मीत तब आये द्वार, कब से रहे पुकार, गायिकायें गाय रहीं, बाजे

शहनाई । २ । उठके प्रात: स्नान, तिलकादि कीजे कान्ह, मिश्री माखन भोग को अरोगलो गुसांईं । ३ । माथे पै मुकुट मोर, पीताम्बर पहनो और देखो निज दास ओर मधुर मुसकाई । ४ । हो कृष्ण राम संकीर्तन, मण्डल हो बृन्दावन, वहाँ भक्ति की लहर बहा दो कन्हाई । ५ । 'धरणीधर' सेवक ओर, देखो कछु माखन चोर, चरणों में दे दो ठौर, तनिक तो कन्हाई । । ६ । ।



तुलसी विवाह के दिन की आरती



सीता विष्णो प्रभु जय बिष्णो । टेर । सीता राम समाना जोड़ी तथा विष्णो । टेर । धन्य तपस्या तेरी हरि को पति पाया । । मैया । । धन्य हरे तुलसी को तुमने अपनाया । । तुम बिन भोग न लगता ऐसी हरि प्यारी । मैया० । तव दल देख अरोगें गोवर्द्धन धारी । नव मणियोंकी कंठी जो करते धारण । मैया० । हरि कर देते उनकी यम वाधा वारण । तुलसी युत चरणामृत जो नर हैं पीते । मैया० । पार और रोगों से हो जाते रीते । जय तुलसी तू हुलसी हरि को वर पाया । । मैया० । कृपया पूत बनादे 'धरणीधर' काया । ।

श्रीसत्यनारायण स्वामी की आरती

ॐ जय लक्ष्मी रमणा, प्रभु जय लक्ष्मी रमणा । सत्य नारायण स्वामी, जन पातक हरणा । ॐ । रत्न जटित सिंहासन, अद्भुत छवि राजे । नारद करत नीराजन, घण्टा ध्वनि बाजे । ॐ । प्रगट भये कलि कारण, द्विजको दरश दियो बूढ़ा ब्राह्मण बनकर, कंचन महल किया । ॐ । दुर्बल भील कुठारो, जिस पर कृपा करी । चन्द्रचूढ़ इक राजा, जिसकी विपति हरी । ॐ । वैश्य मनोरथ पायो, श्रद्धा तज दीनी । सो फल पायो प्रभुजी, फेर स्तुति कीनी । ॐ । भाव भक्ति के कारण, छिन-छिन रूप धरयो । श्रद्धा धारण कीनी, जिनको काज सरयो । ॐ । ग्वाल बाल संग राजा, बन में भक्ति करी । मन बांछित फल दीना, दीन दयाल हरी । ॐ । चढ़त प्रसाद सवायो, कदली फल मेवा । धूप दीप तुलसी से, राजी सत्य देवा । ॐ । श्री सत्यनारायणजी की आरति जो कोई नर गावे । तन मन सुख सम्पति, मन वांछित फल पावे । ॐ ।

आरती श्री शिवजी की

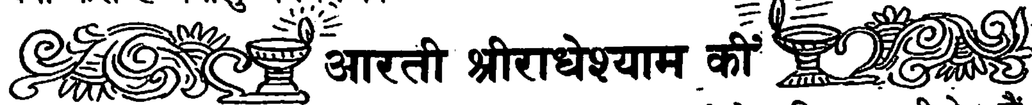
शीश गंग अर्धंग पार्वती विराजत कैलासी । नन्दी भृगी नृत्य करत हैं, धरत ध्यान सुर सुखरासी ।। शीतल मंद सुगन्ध पवन बहे, बैठे हैं शिव अविनाशी । करत गान

गन्धर्व सप्त स्वर राग रागिंनी मधुरासी ।। यक्ष — रक्ष-भैरव जहँ डोलत है बनके वासी । कोयल शब्द सुनावत सुन्दर, भ्रमर करत हैं गुंजासी । कल्पद्रुम अरु पारिजात तरु लाग रहे हैं लक्षासी ।। कामधेनु कोटिक जहँ डोलत करत दुग्ध की वर्षा-सी ।। सूर्यकांत सम पर्वत शोभित, चन्द्रकांत सम हिमराशी । नित्य छहों ऋतु रह सुशोभित, सेवक सदा प्रकृति-दासी ।। ऋषि मुनि देव दनुज नित सेवत, गान करत श्रुति गुणराशि । ब्रह्मा-विष्णु निहारन निशिदिन, कछु शिव हमकूं फरमासी ।। ऋद्धि-सिद्धि के दाता शंकर, नित सत्‌चित् आनन्दराशी । जिनके सुमिरत ही कट जाती कठिंन काल-यम की फाँसी ।। त्रिशूलधरजी का नाम निरन्तर, प्रेम सहित जो नर गासी । दूर होय विपदा उस नर की, जन्म-जन्म शिवपद पासी ।। कैलासी काशी के वासी अविनासी मेरी सुधि लीजो । सेवक जान सदा चरणन को अपनी जान कृपा कीजो ।। तुम तो प्रभुजी सदा दयामय अवगुण मेरे सब ढकियो । सब अपराध क्षमा कर शंकर किंकर की विनती सुनियो ।।

आरती भगवान की

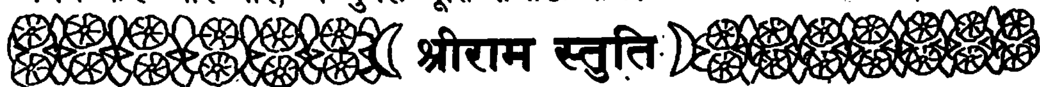
शरण में आये हैं हम तुम्हारी दया करो हे दयालु भगवन । सम्हालो बिगड़ी दशा हमारी, दया करो हे दयालु भगवन ।। न हममें बल है न हममें शक्ति, न हममें साधन न हममें

भक्ति । तुम्हारे दर के हैं हम भिखारी, दया करो हे दयालु भगवन् ।। जो तुमहो स्वामी तो हम हैं सेवक, तुम हो पिता तो हम हैं बालक । जो तुम हो ठाकुर तो हम हैं पुजारी, दया करो हे दयालु भगवन् ।। प्रदान कर दो महान् शक्ति भरो हमारे में ज्ञान भक्ति । जभी कहाओगे सर्वाधारी, दया करो हे दयालु भगवन्।। न होगी जब तक दया की दृष्टि, न होगी तब तक कृपा की वृष्टि । न तुम भी तब तक हो न्यायकारी, दया करो हे दयालु भगवन् । हमें भी बस टेक नाम की है, पुकार यह राधेश्याम की है । तुम्हारी तुम जानो निर्विकारी, दया करो हे दयालु भगवन् ।।



आरती श्रीराधेश्याम की

मैं तो आरती उतारूँ राधेश्याम की रे । राधेश्याम की रे, मुक्तिधाम की रे । मैं तो० । हृदय के कपाट खोल, मुक्ति के तले हिंडोल । मधुर नाम बोल बोल । मैं तो चरन छवि निहारूँ राधेश्याम की रे । मैं तो० । लला के चरन पखार लली के बसन सँवार । नमन करूँ बार बार, मैं युगल मूर्ति सजाऊँ राधेश्याम की रे । मै तो० ।



श्रीराम स्तुति

भये प्रकट दीन-दयाला, कौशल्या हितकारी । हर्षित महतारी मुनि-मन-हारी,

अद्‌भुत रूप निहारी ।। लोचन अभिरामा, तनु घनश्यामा निज आयुध भुजचारी । भूषण बनमाला, नयन, विशाला, शोभासिंधु खरारी ।। कह दुइ कर जोरी, अस्तुति तोरी, केहि विधि करों अनन्ता । माया-गुण-ज्ञाना तीत अमाना, वेद पुराण भनन्ता ।। करुणा सुख सागर, सब गुण-आगर, जेहि गावहिं श्रुति संता । सो मम हित लागी, जन अनुरागी, प्रगट भये श्री कंता ।। ब्रह्माण्ड निकाया, निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै । मम उर सो वासी यह उपहासी, सुनत धीर मति थिर न रहै ।। उपजा जब ज्ञाना, प्रभु मुसुकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै । कहि कथा सुनाई, मातु बुझाई जेहि प्रकार सु प्रेम लहै ।। माता पुनि बोली, सो मति डोली, तजहु तात यह रूपा । कीजै शिशुलीला अति प्रियशीला, यह सुख परम अनूपा ।। सुनि वचन सुजाना, रोदन डाना, होइ बालक सुर भूपा । यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भव कूपा ।।

दोहा – विप्र-धेनु-सुर संत-हित, लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुण गोपार ।।

श्री यमुनाजी की आरती

जय जय श्रीयमुने माँ जय जय श्रीयमुने । श्री गोलोक निवासिनि वासिनि ब्रज रमने । जय० । सूर सुते संज्ञा उर जय जय अवतरने । उतरि दिशिकर पावन पावन तप

करने । जय० । पुनि :कलिंद मद मर्दन प्रभुसेवा स्वीकरने । दहनरेख तन गिरिवार आरति स्तुति करने । जय० । हित अपराध क्षमा कर रजमय श्री पतने । तज तब तरणि समर्पित जब मरु गवने । जय० । छिन्न भिन्न कर पावन दाहन अघ हरने । ब्रज लीला रज रंजित माथुर कुल भरने । जय० । श्री विश्रांत बिहारिणि तारण दु :ख हरने । श्री नवनीय प्रिया उर आनन्द चित चरने । जय० । रास रसिक मण्डित पंडित भव तरने । सांयकाल को जो आरति मन बच क्रम करने । जय० । है यम फन्द निवृती वृती प्रभु वरने । कलि के कलि मल हरण सर्व पाप दमने । जय० । रवि की आप सुता केशव की पटरानी । तुमरे यश को गावें नारद शुक ज्ञानी । जय० । सन्ध्योपासन नीरा-जन जो कोई नित्य करे । जो निराजन कें देखें सबरे दु :ख हरे । जय० । कार्तिक सुदी द्वितीया को जो कोई न्हावै । निश्चय वो ही मानुष विष्णु-धाम जावे । जय० । यमुनाजी की आरती जो कोई गावे । वनमाली गुरु मन वांछित फल पावे । जय० ।

आरती नर्मदाजी की

जै जै जगदम्बा जै नर्मदा भवानी ।। टेक ।।

निकली जल धार जोर, पर्वत पाताल फोर, दुष्ट गंज गर्भ तोर, प्रगटी महारानी । घाट घाट छवि अनन्त, बरनत कवि मुनि फनिन्द, काटत जमदंड, फन्द देत

राजधानी । टेक । भूषण वस्त्र शुभ विशाला, चन्दन की खौर भार, मानो रवि प्रात :काल, तेज औ बखानी । देत मुक्ति परम धाम, गावत जो आठों जाम, दुविधा तज मोह काम, ध्यावत जो प्रानी । टेक । ध्यावत अज सुर सुरेश, पावत नहिं पार शेष, गावत नारद गणेश, पंडित मुनि ज्ञानी । संगम सागर मंझार, भंजि उदधि अहंकार, उदर फार निकर धार ऊपर छहरानी । टेक । अष्ट भुजा बल अखंड, बाहन बल अति प्रचंड, सप्त द्वीप नौ खंड महिमा तव जानी । दैके दरसन प्रसाद, राखो माता मरयाद, दास गंग करत याद, वेद मति बखानी ।। टेक ।।

ईश्वर प्रार्थना

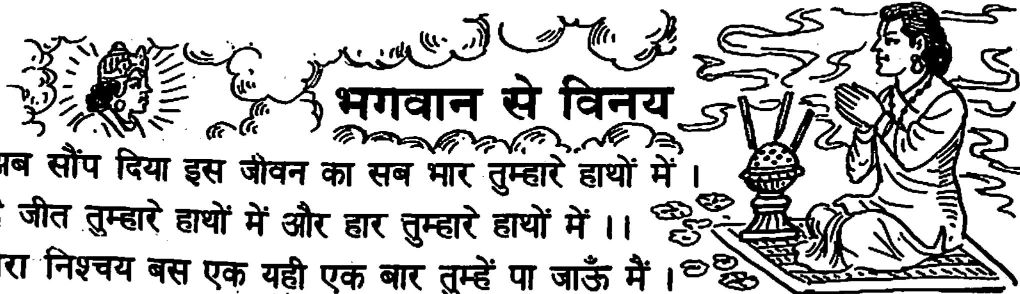
तेरे पूजन को भगवान बना मन मन्दिर आलीशान । किसने जानी तेरी माया किसने भेद तुम्हारा पाया । हारे ऋषि मुनि कर ध्यान बना मन मंदिर आलीशान । तू ही जल में तू ही थल में तू ही मन में तूही वन में । तेर रूप अनूप जहान बना मन मन्दिर आलीशान । तू हर गुल में तू बुलबुल में तू हर डाल के हर पातन में । तू हर दिल में मूर्ति महान बना मन मन्दिर आलीशान । तूने राजा रंक बनाये तूने भिक्षुक राज बैठाये । तेरी लीला ऐसी महान बना मन मन्दिर आलीशान । झूठे जग की झूठी माया मूरख इसमें क्यों परमाया । कर जीवन का कुछ कल्याण बना मन मंदिर आलीशान ।

भजु श्री गोविन्दं परमानन्दं, करुणा कन्दं राम हरे । श्री दशरथनन्दन असुर निकन्दन जन उर चन्दन श्याम हरे । कृष्ण मुरारे नन्द दुलारे, प्रीतम प्यारे कृष्ण हरे । जय राम हरे जय राम हरे, जय कृष्ण हरे जय कृष्ण हरे ।

प्रार्थना

सीताराम, सीताराम, सीताराम, कहिये । जाही विधि राखे राम ताहि विधि रहिये ।। मुख में ही राम नाम, राम सेवा हाथ में । तू अकेला नाहीं प्यारे, राम तेरे साथ में ।। विधि का विधान जान, हानि लाभ सहिये । जाही विधि राखे राम, ताहि विधि रहिये ।। सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिये । किया अभिमान तो फिर, मान ना पायेगा । होगा प्यारे वही जो श्रीरामजी को भायेगा ।। फल आशा त्याग, शुभ काम करते रहिये । जाही० । सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिये ।। जिन्दगी की डोर सोंप, हाथ दीनानाथ के । महलों में राखे चाहे झोपड़ी में वास दे ।। धन्यवाद निर्विवाद राम नाम कहिये । जाही० । सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिये ।। आशा एक राम जी से, दूजी आशा छोड़ दे । नाता एक राम जी से, दूजा नाता तोड़ दे ।। साधु संग राम रंग, अंग अंग रँगिये । काम रस त्याग प्यारे, राम रस पगिये ।। जाही० ।। बिगरी जन्म अनेक की, सुधरे अब ही आज ।। होउ राम को नाम जप, तुलसी तजि कुसमाज ।।

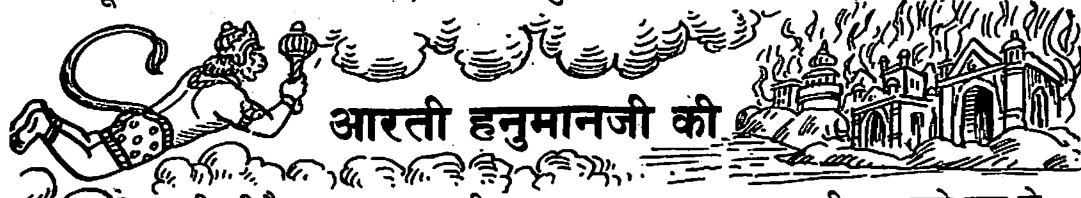




भगवान से विनय

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में ।
है जीत तुम्हारे हाथों में और हार तुम्हारे हाथों में ।।
मेरा निश्चय बस एक यही एक बार तुम्हें पा जाऊँ मैं ।
अर्पण कर दूँ दुनिया भर का सब प्यार तुम्हारे हाथों में ।। अब सौंप दिया ।।
जो जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ ज्यों जल में कमल का फूल रहे ।
मेरे सब गुण दोष समर्पित हों, गोपाल तुम्हारे हाथों में ।। अब सौंप दिया ।।
यदि मानुष का मुझे जन्म मिले, तो तव चरणों का पुजारी बनूं ।
इस पूजक के इक-इक रंग का हो तार तुम्हारे हाथों में ।। अब सौंप दिया ।।
जब-जब संसार का कैदी बनूँ निष्काम भाव से कर्म करूँ ।

फिर अन्त समय में प्राण तजूँ हे नाथ तुम्हारे हाथों में ।। अब सौंप दिया ।।
मुझ में तुझ में बस भेद यही, मैं नर हूँ तुम नारायण हो ।
मैं हूँ संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में ।। अब सौंप दिया ।।

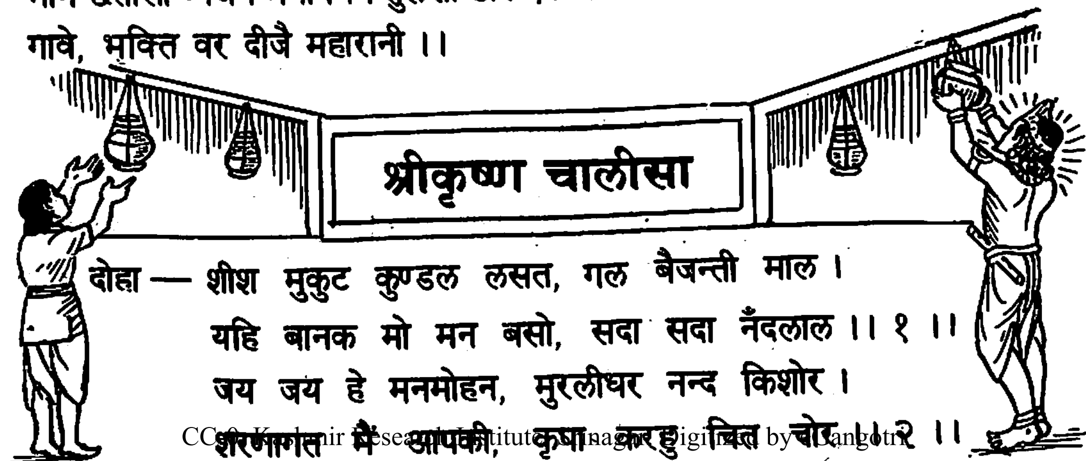


आरती हनुमानजी की

आरती कीजै हनुमान लला की । दुष्ट दलन रघुनाथ कला की ।। जाके बल से गिरवर काँपे । रोग दोष जाके निकट न झाँके ।। अंजनी पुत्र महा बलदाई । संतन के प्रभु सदा सुहाई ।। दै बीड़ा रघुनाथ पठाये । लंका जारि सिया सुधि लाये । लंका सी कोट समुद्र सी खाई । जात पवनसुत बार न लाई । लंका जारि असुर सब मारे । सियाराम के काज सँवारे । लक्ष्मण मूर्छित पड़े धरणी पर । आनि सँजीवन प्राण उवारे ।। पैठि पताल तोरि यम कातर । अहिरावण के भुजा उखारे ।। बाँये भुजा सब असुर संहारे । दायें भुजा सब संत उबारे । सुर नर मुनिजन आरती उतारें जै जै जै हनुमानजी उचारें । कंचन थार कपूर जलाई । आरती करति अंजनी माई ।। जो हनुमानजी की आरति गावै ।। बसि बैकुण्ठ अमर-पद पावै ।।

आरती श्री तुलसीजी की

तुलसी महारानी नमो-नमो-नमो, हरि की पटरानी नमो-नमो । धन तुलसी पूरन तप कियो, मैया सालिगराम महापटरानी । जाके पंचमंजरी कोमल मैया श्रीपति चरण कमल लपटानी । नमो धूप दीप नैवेद्य आरती मैया, पुष्पन की वर्षा बरसानी ।। छप्पन भोग छतीसों व्यंजन मैया बिन तुलसी हरि एक न मानी । सामरी सखी माई तेरी आरति गावे, भक्ति वर दीजै महारानी ।।



दोहा — शीश मुकुट कुण्डल लसत, गल बैजन्ती माल ।
यहि बानक मो मन बसो, सदा सदा नँदलाल ।। १ ।।
जय जय हे मनमोहन, मुरलीधर नन्द किशोर ।
शरणागत मैं आपकी, कृपा करहु चित चोर ।। २ ।।

जय जय जगबन्दन जय यदुनन्दन । जय वसुदेव देवकी नन्दन ।। जय यशुदा पति नन्द दुलारे । जय निज भक्तन के रखवारे ।। कृष्ण कन्हैया धेनु चरइया । जय नट नागर नाथ नथनिया ।। तुम नख पर प्रभु गिरिवर धारी । आयके दीनन कष्ट निवारी । अधर पै धर मुरली के बजइया । लाज रखो प्रभु चीर बढ़इया ।। मृदु मुस्कान मोहिनी डारे । गोल कपोल चिबुक अरुणारे ।। कटि किंकिणी काछिनी काछे । कुण्डल श्रवण पीत पट आछे । मोर मुकुट वैजन्ती माला । राजत राजिव नयन विशाला ।। छवि लख सुर नर सुनि मन मोहै । नील जलज सुन्दर तनु सोहै ।। मस्तक तिलक बाल घुँघराले । निज भक्तन गोपिन रखवाले ।। मधुवन जलत अगिन जब ज्वाला । भई शीतल लखकहिं नन्दलाला ।। अघा, बका, धेनुक तुम मारी । करि पय पान पूतनहिं तारी ।। सुरपति जब ब्रज चढ़ो रिसाई । मुसलाधार वर्षा बरसाई ।। क्रोधित ह्वै बृज चहत बहायो । तब तुम गिरि नख धार बचायो । मुख माहिं-चतुर्दश लोक दिखाई । यशुदा मैया मन भ्रम अधिकाई ।। जब असुर-राज बृज घूम मचाई । मारो कंसहि बृज जन सुखदाई ।। नाथ कालियहिं घमंड हर लीनों । चरण चिन्ह दै निर्भय कीनो । करि गोपिन संग रास विलासा । पूरी मन की सब अभिलाषा ।। महा असुर शिशुपालहि मारो । दुष्टिहि मारि भूभार उतारो ।। मात पिता की बंदि छुड़ाई । नृप उग्रसेन कहँ राज दिवाई ।।

लोकपताल से छः सुतलाये । देवकी मातु के शोक मिटाये ।। भीमासुर मुर दैत्य संहारी । लाये सोलह सहस्र कुमारी । दै भीमहिं तृण चीर इशारो । जरासंध राक्षस कैं मारो ।। तंदुल तीन मुठी मुख डारयो । दीन सुदामा को दुख टारयो ।। दुर्योधन की तुम मेवा त्यागे । प्रेम से साग विदुर घर माँगे ।। पार के रथ हाँकन हारे । भीष्म प्रतिज्ञा के रखवारे ।। गह्यो चक्र नहीं शंका कीनी ।। अर्जुन की तुम पंत रखलीनी ।। मीरा ने तुमको पति कर माना । पी लियो विष चरणामृत जाना ।। भेजा राणा साँप पिटारी । शालग्राम बने बनवारी ।। दीनानाथ लाज अब जाई । कहि कहि कहि द्रौपदि टेर लगाई । चीर बढ़ायो प्रभु ततकाला । दुष्ट दु:शासन थको मतवाला ।। श्याम सुन्दर दीन हितकारी । लखी प्रेम की महिमाभारी ।। दया दृष्टि कीजै बनवारी । सब सुख कारण दुख निवारी ।। हे ब्रज भूषण यह वर दीजै । जान भक्त निज भक्ति दीजै ।। भक्त ''प्रहलाद'' की पत रख लीजै । निजजन जान शरण तब दीजै ।। करम वश जिस योनि मैं जाऊँ । तहाँ तहाँ दरश तुम्हारा पाऊँ ।। क्षमहु सकल अपराध हमारे । असुर निकन्दन भक्त निवारे ।। करहु कृपा अब दर्शन दीजै । बोलो असुर निकन्दन की जै ।।

समाप्त

प्रकाशक

पूजा प्रकाशन
पुल कुतब रोड सदर बाजार दिल्ली-6

प्रमुख विक्रेता
गर्ग कम्पनी बुकसेलर
पुल कुतब रोड (सदर बाजार) दिल्ली—6